



॥ अहम् ॥

आत्मतिलक ग्रन्थसोसायटी, पुस्तक न २७

# म हा वी र शा स न



लेखक-

श्रीमान् बलभविजयजी महाराजके शिष्यरत्न  
पन्यास श्रीललित विजयजीमहाराज



भारवाड के सादही महर-निवासी शा सहसमल्ल पुनमचद और  
शा दहीचद मेघाजी, तथा मुडारागाव निवासी  
शा चैनमल्ल गगाराम प्रदत्त द्रव्य सहायसे

प्रकाशक-

आत्मतिलक ग्रन्थसोसायटी  
ठि. भारत जैन प्रियालय, पूना सीटी



वीर स २४४८ ]

मूल्य छ आना

[ विक्रम स १९७८

---

---

लक्ष्मण भाऊराव कोरुटे यांनी पुणे पेठ सदाशिव

घ न १०० येथे आपल्या 'हनुमान'

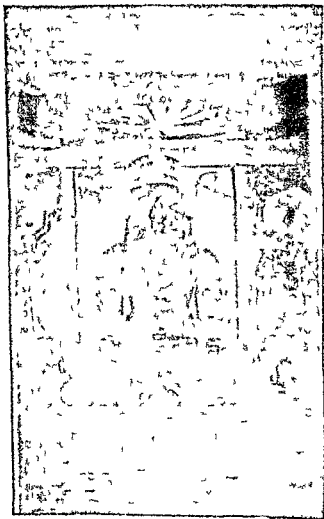
छापला यात छापिले

---

---







हस्ति तुण्डी तीर्थस्थं भगवन्मूर्ति ।



॥ श्री ॥

## सहावीरदेव

मेरे स्थालस गीरप्रभु के चरित के कहने के पूव इस बाग का परामर्श करना ठीक होगा कि महावीर देव के पूव भारतवर्ष की दशा कैसी थी । आजसे असह्य वर्ष पहले नवम और दशम तीर्थंकर देव का मध्यसमय भारतवर्ष के धार्मिक इतिहासमें कलङ्करूप था ।

उस समय श्रीआदिदेव श्रद्धामनाथ स्वामी का स्थापन की हुई और तत्पश्चात् हुए हुए अजितनाथादि तीर्थंकरों की परिपुष्ट की हुई—धार्मिक मर्यादा लुप्त हो गई थी । भरतचर्मी द्वारा निर्मित आर्यवेदों की शिक्षा का न्हास ही नहीं बल्कि अभाव ही हा गया था ।

जिस भारतभूमिमें कदणारूप त्रिपथगा का विमल प्रवाह असह्य वर्षोंसे चला आ रहा था, वहां उस समय दुर्वासनाओं की बूली उड़ रही थी ।

जिस पवित्र निर्वाणजननी क्रिया की अनन्तशानियों ने स्थापन किया था, उस का स्थान आडम्बरों से भरी हुई पुरोहितों ( याशिकों ) की शिक्षाओं ने उन्नीया था, अतः यह उत्तम क्रिया पैशाचिकरूपको धारण किये चली जाती थी । वेदवेत्ता पण्डितजन भी वदक्रदाओंका अर्थ भूत ते जा रहे थे ।

सर्व साधारण और श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण—पण्डित—वेदशास्त्राभ्यासी ब्राह्माडम्बरों से और स्वगुरुओं के प्राप्त करने की लालसाओं में मुग्ध हुए पड़े थे ।

उस वक्त भारतवर्ष का जीवनप्रवाह कर्मबाण्ड—नास्तिकता—अथवा



अज्ञान की तक झुक रहा था, ब्राह्मणलाग प्राचीन काल के सुखों का स्वप्न देखने हुए और समय का न विचारते हुए दूसरी जातियों के स्वत्वों को छीन कर अपने अधिकार को बचाने का यत्न कर रहा था।

परमाधनाग और अध्यात्मविद्या का शोध से इन गिन मनुष्य भी जानते हो इसमें भी पत्र साका थी।

### ॥ प्रजाहमर्ग ॥

आत्मनिराभण-निराहृकिया-अन्तर्दृष्टि-ज्ञानयाग-अपवग कामनादि त्रिगुद्ध मानव कसत्रों का छ डकर यज्ञपूजा-सभार वृद्धिनिबन्धन पशुवध आहृति प्रदानादि नियार्य सुखकर, सुगम और शास्त्रविहित मानी जाती थी। ज्ञानप्राप्ति में उदात्तता होती जाती थी, ज्ञानयोग के स्मिरीक कमकाण्ड का यथाचित पाठन उनका स्वग का देनेवाला प्रतीत होता था, परन्तु-वह यह नहीं समझते थे कि

द्वयार्धर्मनदीतीरे, मरु धर्मास्तृगादुरा

तस्या शोषमुपेजाया, अस्थितिमुत्ति ते चिरम् ? ॥ १ ॥

सारंग यह कि स्वयत्त और अज्ञान अधिन हि दुओं की दशा उस समय अत्यन्त रोचनीय थी।

जब जनता का हृदय इतना सङ्कुचित हो तब वह कदापि श्रुतस्वों के अनुसरण नहीं कर सकती। ब्राह्मण-शत्रिय और वैश्य कमकाण्ड के यज्ञमें बड़े मोहसे स्वगकामना में लग्नचा हुए हुए अपने आत्मिक सुखों के पराङ्मुख होकर आत्मा की ही आहृति दे रहे थे। आत्मोन्नति का रास्ता वह मुग बैठे थे। जडवाद की मूर्खता और जमयत्रियों की पूजा चारों तक अपना महत्त्व जमा रही था। अस्तित्व जननभाग का अपनी दृष्टि-जनता दरय-उत्तर मन-गार अपनी आत्मशक्ति-ब्राह्मणों की

। म. १। १।

१९११ फरवरी (समस)

। यज्ञो लोगों

का परमधम समझा जाता था । “ वर्णानां ब्राह्मणो गुरु ” इस वाक्य-  
को ईश्वर वाक्यसमान अटूट अबाध्य माना जाता था ।

॥ अवतारी का आगमन ॥

उस समय जब कि भारतवर्ष की धार्मिक तथा सामाजिक  
अवस्था बड़ी ही बुरी थी । सुघारे का बाठसूर्य दुर्दशारूपी रात्रीका  
नाश करने के, लिय उदय हुआ ! ! ! ।

क्षत्रियकुण्ड नगर जो कि इक्ष्वाकु राजाओं का राजधानी थी, वहाँ  
विक्रम संवत् स ५४२ वर्ष पूर्व सिद्धार्थ राजा की स्त्री त्रिशला की कुक्षि  
से एक प्रतापी बालक का जन्म हुआ, जिसका भारतवर्षमें ही नहीं बल्कि  
त्रिलोकी भरमें धर्म की—शुभकर्म की—नीति की—आर्य रीति की—पारमा-  
र्थिक सुखों की एवं शुभनामनाओं की वृद्धि करनी थी । उस बालक का  
नाम “ वर्धमानकुमार रक्ता गया, परन्तु वह बाल्यावस्था में प्रसन्नता-  
से परीक्षापूर्वक इन्द्रादि देवताओं क दिय हुए वीर अथवा महावीर  
नाम स ही अपने जीवन के अन्त तक प्रसिद्ध रहा । महात्मा महावीर  
जन्मसे ही सूर—वीर—व गभीर—मातापिता क परम भक्त—प्रजावत्सल—  
दानशौण्ड और उदाय थ ।

आप तीन ज्ञानसयुक्त थे, सर्व विद्यापारंगत थ, तथापि मोहवशीभूत  
होकर आपके मातापिता आपका शास्त्राध्ययन करान के लिये  
किसा पाण्डित के पास ल गय, आप मनमें अहकृति न कर सब कुछ देख  
रहे थे जब यह घटना इन्द्रमहाराजन देखी तो घट मनही मन हसने  
हुए वहाँ आये जहाँ कि वीर कुमार पाण्डित के मकान पर आ रह थ, इन्द्र  
ने अपने ज्ञान स देखा कि इन इन बातोंका पाण्डित को जन्म से ससय  
है ता, उर्हीं बातों की वीर परमात्मा स शृंग की, परमात्मा तो अदो-  
क्षयशानी थे अथात् सामान्य मनुष्यों से अमल्य गुणाधिक ज्ञानशक्ति  
के धारक थे, इन्द्र के पूछने पर बड़ी गभीरता से उन प्रश्नों का आपने

समाधान किया। पण्डित प्रभति सज्जनों के आश्रय का पार नहीं रहा। !! उस वक्त इन्द्र महाराज ने वीर कुमार की आत्मशक्ति का पश्चिम दिलाने हुए कहा—

मनुष्यमात्र शिगुरेय विप्र । नाशकनीयो भवता स्वचित्ते ।

विश्वत्रयीनायक एव वीरजिनेश्वरो चाद्रमपारदृश्या ॥ १ ॥

इनका विचार गोल मन बालकपनसे ही पृथ्वी के वास्तविक लामों के प्राप्त करनेमें था। दीनानामों की दुर्दशा को देख आपका उदारमन पर बड़ा आघात होता था।

उस वक्त के आठम्वरों को देख आप समझते थे कि यह धर्म नहीं किन्तु धर्म के नाम से अज्ञान है, परन्तु सब काय दशकाल की असुखला को पाकर ही सुधारते हैं।

आपका ससार का उद्धार करना सदा से मिय था, अतः आपने सुख का तिलाञ्जलि देकर जगत को सुधारना तथा शक्ति देनी ठान ली, इस विचार का दृढ़ करके आपने राज्य—स्त्री—परिवार—मालमिलकत—स्वजनबन्धुओं—का परित्याग कर के—तीन अक्षय—अटोसा बाढ़—अरुणा लाल—सानहियों का तान देकर ससार को उड़ दिया।

॥ आत्ममोगपर शरयसन्धा ॥

आपका सिद्धांत था कि—“गदाराय यत्साध्यं, यद्दधाय यत्तु दुर्लभम् । तत्सर्वं तपसा साध्यं, तपो हि दुर्लभमम् ॥ १ ॥” जो चीज आप धना करने योग्य है, जिसकी साधना में तन मन धर की आहुति दी जाती है, जो योगियों के भा ध्यान करने योग्य है, जो चीज ससारमें अति दुर्लभ है वह सब तपोबल से साध्य है, तप निकाचित कर्मकी गति को भी राक सकता है, परन्तु तपकी शक्तिको कोई नहीं राक सकता, तपसे आत्मा की अनन्त शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, अथात् तपस्या के करने से मनुष्यका कवल सा कवल दशनकी प्राप्ति भी हो सकती है।

मोहरे ३० धियाँ का त्याग कर शालिभद्र उनसे शिष्य हुए थे। शालि-  
भद्र ने अलाया और भी अनक राजपुत्र जैसे कि मेघकुमार अभय-  
कुमार आदि, अनक श्रुतिपुत्र जैसे कि धन्नाकुमार और वनाकाफनी,  
प्रमुचरणोमे दीक्षित हुए थे।

आपक पाचकप्याणक जिन का वर्णन आगे लिखा जायगा उनमें  
६४ इन्द्र सहपरिवार हाँर हुआ करत थे, परन्तु उनपरभी आपको  
आसीति नहीं थी।

आपका मुख्य सिद्धांत था कि ससारक्षत्रमें सत्यमाग खोजनेवालको  
अपना जीवन उध बनाना चाहिये। उन्होंने अपन शिष्योंका इस कदर  
उपदेशद्वारा स्थिर किया कि मरणानकष्टक आनपर भी वह धमसे  
विचलित नहीं होत थे।

आपक सप्रदायमें अनाति स्वभावके अनुसार स्त्री और पुरुष समी  
\* कन्याणमागका अलत्यार कर सकते थे। दीक्षित पुरुष—आय, मुनि, साधु,  
तपस्वी, ऋषि, भिक्षुक, निग्रथ, अनगार और यति आदिक नामों से  
पहचाने जाते थे, और दीक्षित धियाँ—आर्या, भिक्षुणी, साध्या, तपस्विनी  
निग्रथ्या आदि नामों से पहचानी जाती थी। आपक निवाण क बाद भी  
गातमादि आपक शिष्योंने, उसम भी स्तप्त करके सौवर्म स्वामीन आपकी  
शिष्याओं का याथातथ्यरूपस प्रयाह प्रचरित रक्ता था।

परमात्मा क रथमागधी भाषामें थे, और १४ पुरों की विद्या  
मस्कूलमाषा में ३

आपक नि

१ होती हुई

और चर

१७०५७।

२। अरसा बीतजानपर आपक वाक्यों-

३ रूपमें स्थापन करनेके लिये मथुरा

थी, मथुरा की सभाने मुख्य

पुरकी सभामें मुख्य नियन्ता

लिये मनुष्य को यह बाध करना चाहिये कि जिससे वह पुनरात्मनस  
सदाके लिये मुक्त होकर निर्वाण का प्राप्त हो जाय, अर्थात् सांसारिक  
बन्धनाओं से मुक्त होकर लिये छूट जाय। यह फल यशो की सबन्धित  
याओं द्वारा अथवा अनाप पशुओं का निन्द्य होकर अन्तिमे जाक देने से  
पभी नहीं मिल सकता।

हों पवित्रतापूर्वक जीवन गुहारन म आर वासनाओं के दबाने हो  
सकता है।

राजा और किसान, ब्राह्मण और शूद्र, अमीर और अनाथ, अमीर  
और गरीब, सबही वीर परमात्मा की शिष्याओं का प्रेम से सुनते थे,  
आपके ज्ञानकी प्रभा विक्रम की तरह मनुष्यों के हृदयपर त माल असर  
कर जाती था।

जो लोग सिर्फ तमाशाही दस्तनका आत थे, आपका अपूजानके कम  
कार से चकित हो आत थे। श्रद्धालुओं की तरह उन मनुष्योंपर भी  
आपका प्रभाव पडता था।

### [ ॥ परिवार परिचय ॥ ]

परमात्मा महावीर देवने पहले पहल अपापा नगरी में उपवास किया था,  
वहाँ इन्द्रभूति १ अग्निभूति २ वायुभूति ३ वगेरह ११ विद्वान् ब्राह्मण यज्ञ  
विया क करन क लिये एकत्र हुए हुए थे, उनका प्रभुन सत्यमार्ग सम-  
झाकर अपन आद्य शिष्य बनाये। ये सर्व पण्डित ४४००—गिण्ठे  
सहित प्रमुक्त धरणारविन्दोमें आकर दीक्षित हुए थे।

प्रभु खुद राग्य त्याग कर मुनि हुए थे इसलिये जिन का नाम आग  
लिखा जायगा वह चोडा, श्रेणिक, उदायन, वगेरह राजा प्रमुक्त भक्त  
बने थे।

परमात्मा क सप्तागसारतादर्शक उपदेशको सुनकर ९९ मोड सोना

माहरे ३२ स्त्रियों का त्याग कर शालिभद्र उनके शिष्य हुए थे । शालिभद्र क अलावा और भी अनक राजपुत्र जैसे कि मेघकुमार अमय कुमार आदि, अनक श्रेष्ठिपुत्र जैसे कि धनाकुमार और धनाकाकनी, प्रमुचरणोंमें दीक्षित हुए थे ।

आपक पाचकन्याणक जिन का वणन आग लिखा जायगा उनमें ६४ इन्द्र सहपरिवार हाजिर हुआ करते थे, परन्तु उनपरमी आपको आसक्ति नहीं थी ।

आपका मुख्य सिद्धांत था कि ससारक्षत्रमें सत्यमाग स्त्राजनवालको अपना जीवन उच्च बनाना चाहिये । उन्होंने अपने शिष्योंका इस कदर उपदेशद्वारा भिन्न किया कि मरणातकएक आनपर भी वह धमधे विचलित नहीं होत थे ।

आपके सम्रदायमें अनादि स्वमानके अनुसार स्त्री आर पुरुष समी १) कन्याणमागका अस्त्यार कर सकते थे । दीक्षित पुरुष—आय, मुनि, साधु, तपस्वी, ऋषि, भिक्षुक, निर्ग्रन्थ, अनगार और यति आदिक नामों से पहचाने जाते थे, और दीक्षित स्त्रियाँ—आर्या, भिक्षुणी, साध्वी, तपस्विनी निर्ग्रन्थी आदि नामों से पहचानी जाती थी । आपक निर्वाण क बाद मी गौतमादि आपक शिष्योंने, उत्तम मी खास करक सौवर्म स्वामीन आपकी शिक्षाओं का याथातथ्यरूपस प्रवाह प्रचरित रक्खा था ।

परमात्मा के आगम अर्धमागधी भाषामें थे, और १४ पूर्वों की विद्या सस्कृतमाधा में थी ।

आपक निर्वाण क बाद कितना ही अरसा बीतजानपर आपक वाक्यों की होती हुई छिन्नभिन्न दशाको अष्ट रूपमें स्थापन करनके लिये मथुरा नगरीमें और वल्लभीमें सभाएँ हुई थीं, मथुरा की सभामें मुख्य नियामक स्कन्दिलार्च्य थे, और वल्लभीपुरकी सभामें मुख्य नियन्ता देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण थे ।

आपक शासन की धृति मप्रति नरेशन अर कुमारपाल सोलकान ।  
बहुत शूरतक फरफा थी ।

### [ मासिक ]

एय चक्र समान गतिवाऱ इस ससारम जिस जिस समय धम  
क्रियाओका हास होता ह उस उस समय मयात्माओ क पुण्य प्रकपस  
ससार में उत्तम पुण्योता जम हाता ह । वह उत्तम जीरमा तीर्थकर  
तीर्थनाथ विश्वनायक कहे जान हैं । जिन विशुद्धात्माओ न इस पदवी  
पान क तीन भव पहिल प्रकृष्ट तप आदि बीस अथवा उनमें स कति  
पय सत्कृत्यो को सतत सवन करक तीर्थकर नामकम इट बाधा हुआ  
हाता हैं उही महापुरुष इस पदवी का हासिल कर सकत हैं ।

य अथवारी पुरुष जिस जमदाभा माता की कुशि म गभरूपस स्थित  
हात हैं, वह माता इन भावी भाग्यशालियों की सुधनारूप शत्रुदश स्वप्नो  
का दलना है ।

तीर्थकर देवा का पांच अवस्थाओ का नाम कल्याणक है, जिन क  
नाम यह ह—

( १ ) १-जनकल्याणक, २-जमकल्याणक ३-दाभाकल्याणक,  
४-कवलज्ञानकल्याणक, ५-निवाणकल्याणक ।

इन पांचही कल्याणका म दवन्द्रादि असख्य त्रय देवी आकर देवा  
धिदेव परमात्मा क गुणग्राम भाक्ति उश्रूषा करत हैं ।

जमकल्याणक क समय सब इन्द्र परमेश्वर का सुमठ पयत पर ल  
जा कर उन का खात्र महात्सव करत हैं और बड़ी भक्ति स पूजा रचाते  
हैं । तदनन्तर बडा हिफाजन स उन्ह माता क पास रखकर अपन उप  
कारा क जन्म की खुशिये मनात अपन २ स्थानो म चल जात हैं ।  
अय मा अनक प्रसगां पर दवन्द्र, महदिक देव, और दविये प्रसु क  
दशन और सद्गुपदश का लाभ लेन को आया करत हैं ।

कवल ज्ञान व बाद ज्ञान समवधारण की गवना होनी इ नव देवेन्द्र चक्रवर्ती सपरिवार उपासना भक्ति में हाजिर होत हैं ।

एसे धम सामाज्यशाली दर्राधिदेव एक एक अवसर्पिणी और उरस पिणा कालम चौबीस चौबीस होने हैं । वत्तमान चौबीसामे—१-श्रीभद्र-धम देवजी, २-श्रीअजितनाथजी, ३-श्रीसभरनाथजी, ४-श्रीअभिनन्द-ननी, ५-श्रीसुमतिनाथजी, ६-श्रीपद्मप्रमुजी, ७-श्रीगुपार्थनाथजी, ८-श्रीअचन्द्रप्रमुजी, ९-श्रीसुपियिनाथजी, १०-श्रीशीतलनाथजी, ११-श्रीश्रेयांसनाथजी, १२-श्रीनासुपूज्यजी, १३-श्रीविमठनाथजी, १४-श्रीजनानाथजी १५-श्रीभ्रमनाथजी, १६-श्रीशांतिनाथजी, १७-श्रीबुधुनाथजी, १८-श्रीअरनाथजी, १९-श्रीमहिनाथजी, २०-श्रीमुनिगुप्तस्वामीजी, २१-श्रीनमिनाथजी, २२-श्रीअमिनाथजी, २३-श्रीपाशनाथजी, २४-श्रीरद्धमानस्वामी ।

इनमें स जा अन्तिम तार्थकर रद्धमान स्वामाजी हैं, उनका प्रसिद्ध नाम है महावीरदेव, वर्त्तमान काठमें जा शासन चरता हे, इस के सचालक यही प्रमु हैं । एस देवाधिन्द्र क एकादश गणधर थ, जिनके नाम—

१-इन्द्रभूति ( गौतम स्वामा ) २-अग्निभूति, ३-वायुभूति, ४-यत्त, ५-गुवम, ६-मण्डित, ७-मौर्यपुत्र, ८-अकपित, ९-अचलप्राता, १०-मेताय, ११-प्रमास, यह ११ ही मुनि श्रीमहावीर क मुख्य शिष्य थ । महावार परमात्मा क निराण क दूसर ही दिन गौतमस्वामी को कवल ज्ञान पैदा हुआ था । कुछ रफों क पीउ सुधमा स्वामी को कवठ ज्ञान पैदा हुआ था ।

इन्द्रभूति ( गौतम ) और सुधमास्वामी क अलावा नव ही गणधर महावीर प्रमु की हयाती मे ही माक्ष चल गय थे । गौतमस्वामी की अपेक्षा भी श्रीसुधमास्वामी दीर्घायु थे इस लिय प्रमुने गण



श्रासुधर्मस्वामीजी क ही सुपुद किया था । गौतमस्वामी और शप सभी गणधर राजगढ़ी नगरी के रहनवाते श्रीरह विद्याविशारद ब्राह्मण थे ।

[ ॥ तत्रज्ञानियोन्नी आत्मरूपा ॥ ]

जब श्रीमहावीर परमात्मा का केवल ज्ञान पैदा हुआ उसवक्त वे सब मिलकर नगर क बाहिर यज्ञ कर रह थे । उसी अवसरमे महावीरकी केवल ज्ञान पैदा हुआ था अत एव महा वीर प्रमुखा ज्ञानात्सर करन क लिये आकाश मार्गस उतरते हुय देवता ओ का दखकर गौतमादि ब्राह्मण और उनक शिष्य पति क ४४०० ब्राह्मण इस वान की निहायत खुशी मनाने लग कि हमारे निय इस यज्ञ क प्रभाव स य सब देवता आ रह है । पर हु व जब सब यज्ञ पात्रक का ग्राहकर आगे बढ तो सबको सशय हुआ कि ये देवता कहीं जात हैं ? लागेस पूछा तो माद्रम हुआ कि ये सब सर्पस को बन्दना करने जा रह हैं । यह सुनकर इन्द्रमूर्ति को बडा आमष हुआ । वह साचने लगा—ससार मे आज भर सवज्ञ होन पर भी दूसरा सर्पस है कि जिसक पास य सब दौड जा रहे है ? बडे आश्चय की घटना तो यह है कि इस वक्त परमपवित्र यज्ञमण्डप भी इन्ह नजर नहीं आता ! ! क्या जाने क्या कारण है कि यज्ञपर इनको अंतर प्रम ही नहीं जागता ? अरतु जेसा वह सवज्ञ होगा वैसेही य देवता भी होग । अमर ना सुगन्धित फूलोपर और कौओंको निम्बकी निंबोलियो पर ही प्रम हुआ करता है ।

परमात्माक दर्शन कर वापिस लौटत हुण लोगो का इन्द्रमूर्ति न डुठ "सकर पूछा क्यों भाइ ! सवज्ञ देखा ? कैसा है ? जवाबमे उहो ने सिर हिलाकर कहा—क्या पूछत हो ? तीन लोक के सर्व जीवात्मा गिनरी करन लगे, आयुकी समाप्ति न हो ! गणित को पराधसे भी आगे बनाया जाय तो भी उस ज्ञानसागर क गुणो की गणना करना असम्भव और अशक्य है । अर आर्ष्य ! महाश्वय ! ! बाहर घुन ! ! किखीने

मूख मनुष्यों का टगा, किसीने स्त्रियों को, किसीने बाल और गोपालों का परन्तु तब तो चन्द्र मनुष्यों को, और विबुध कहलाते हुये दवनाओं का भी जालमे फमाया । अच्छा खद्योत और चन्द्र का प्रकाश सूर्यके आगे कितनी दूर टहेंगा ? । अभी आता हूँ, तेरे साथ विवाद करके तुझे परास्त करता हूँ ।

एक म्यान में दो तलवारें, एक ही युफामें दो सिंह, या एक गगन में दो सूर्य, कभी किसीने दख या सुने हैं ? ।

इस प्रकार विविध आढम्बरों को दिक्षाता हुआ इन्द्रभृति अपन पाचसो ५०० शिष्यों को साथ लेकर प्रमुक्क पास आया । प्रमु अपने ज्ञानसे उसका नाम गोत्र और गुप्तरहा हुआ उसके मनका सशय जा कि उसने सर्वज्ञत्व की क्षति क भयम किसी के पास आज तक जा हिर नहीं किया था उस भी जानने हैं ।

गौतम आकर जब सम्मुख सधा रहा तब “ हूँ गौतम ! इन्द्रभृते त्व सुम्बेन समागतासि ? ” इस तरह प्रमु उसको बुलाते हैं । महावीर क मुखसे अपने नाम और गोत्र का सुनकर गौतम ने विचार किया, अरे ! यह तो मेर नाम गोत्र का भी जानता है । अथवा जगद्विख्यात मेर नाम का कान नहीं जानता ? अगर यह मर मनागत सन्देह को कहे ता जानू कि यह सधा सजज्ञ है ।

गौतम क मनोगत भाव को जानकर त्रिकालविन् महावीर दब कहते हैं ह विद्वन् ! तूर मनमें “ जीव है या नहीं ? ” इस बात का सशय है और उसका कारण वेदमें ग्ही छुड़ —

“ विज्ञान धन एव ष्तेभ्यो मूनेभ्य समुत्याय तान्येवाऽमुविन्यति न प्रत्य सशास्ति ”

और—“ सर्वे अय आत्मा ज्ञानमय ” इत्यादि । तथा—“ द द द ” अर्थात्—दमो दान दया इतिदकारत्रय यो जानाति स जीव ॥

ये दा नूचाएँ हैं। पहिली ऋचास जीव का स्वधा अभाव। प्रतीत हाना है, और दूसरीस जीव की सिद्धि भी हो मकनी है। साधक और वाक् प्रमाणों के मिलनेसे बुद्धारा मन सशयादोलित होर हा है, परन्तु उन ऋचाओं का यथाथ अर्थ तुम्होर ख्यालमे नहीं आया, सुना हम तुमको इतना परमाथ समझात है।

“विज्ञानधन” यह आत्मा का नाम है। जब आत्मा घटपटादि किसी भी चीज को देखती है तब वह उपयाग रूप आत्मा इन्द्रियगोचर पदार्थों का देखती सुनती है या किसी भी तरहस अनुभव गाचर करती है, उसरफ उन अनुभवगोचर पदार्थोंसे ही उस उस उपयागरूप से पेश हाती है और उन पदार्थों क नष्ट होजानेपर या दूर होजानेपर वह उसरूप अथात् घटपटादि पदार्थ परिणत आत्मा उस उस उपयाग स हट जाती है, उस हालत का स्वर कह सकत हैं कि उन उन घट पटादि भर्ता स अथात् भूतनिकारों स उपयागरूप वह आत्मा उत्पन्न होना है, उनके विस्तर जान पर उनमही लय होजाती है।

“न प्रेत्य सज्ञाऽस्ति” पहिले ओ घटपटादि उपयोगात्मक सज्ञा थी, फिर वह कायम नहीं रहसी, उन पदार्थों मे हटकर आत्मा अथात् जिनर पदार्थों मे उपयोगरूप स परिणत होती है उस उस पदार्थ क रूपस नई सज्ञा कायम होता है, उस समाधान स आर प्रमुक जगद्गुरु साम्राज्य के देरनमे इन्द्रभूति (गौतम) ने दाभा स्वीकार करली। इन्द्रभूति वीर परमात्माक प्रथम शिष्य हुए। इस बात को सुनकर अग्निभूति, वायु भूति आदि सब पण्डित अपन अपन परिवार का लेकर आये। मनोगत सन्धियों का निवृत्त करके उन सबन जगद्गुरु महारीरद्व क पास समयम अक्षय्यार किया। प्रमुक इन प्कादश मुख्य पण्डितों को अपन गणवर कायम रिये। और गच्छ का मात्तिक सुभमा स्वामीका ही बनाया।

गौतमस्वामी प्रमुक निर्वाण क दूसरे ही दिन केवली होकर १२वर्षतक

संसारमें अनेक उपकारों का करते हुए भूमद्वलपर विचरत रह और प्रसुके निवाण के २० वष पीउ सिद्धि गति का प्राप्त हुए। सुधम स्वामी क पाप्पर श्रीजम्बूस्वामी बैठे। वस जम्बूस्वामी महाराज ही अन्तिम कपली कहे गये हैं।

जम्बूस्वामी का इतिहास परिशिष्ट पर्व भाग पहिले स आर साहित्य सशोषक भाग तीसरे से जान सकत हैं।

पहले इस बात का सामायतया उल्लेख हो चुका ह कि जैनधम के प्रवक्तक हरपक तीर्थंकर की पांच अयस्था विशेष का जैन पारिभाषिक शब्दोंमें कल्याणक कहते हैं। गीर परमात्मा का जीवात्मा नयसार क भवमें सम्यक्त्व से वासित होकर २६ भव अयाय गतियोंमें भोगकर सत्ताईसवें भवमें त्रिशला राणी की कुक्षिमें आकर पैदा हुय, इतने वृत्तान्त— का नाम अयनकल्याणक है। अनादि काल के अवासित प्राणीन पहिल पहिल मुनि का दर्शन करक किस उच्च आशय से उनका सत्कार किया है किस धर्मप्राप्ति से वह उनस वत्ताव करता है, उनका अनुभव करने वालों के लिय हमारे परमोपकारी गुरुमहाराज की बनाई “महानीर पचम्याणक” पूजा की पहिली ढाल यहाँ लिखी जाती है—

( दोहा )

जब स समकित पाइये, तब स गणना आय।

धीरजीव नयसार के, भव मे समकित पाय ॥ १ ॥

( सारग+कहरवा हम दम दे क चाल )

समकित आतम गुण प्रगटाना, । टक ।

समकित मूठ धरम तरु दीपे ।

विन समकित न चरण नदि जाना ॥ स० १ ॥

अपर विदेह नृप आदेशे ।

मात्र लन नयसार का जाना ॥ स० २ ॥

भाजन समय में निरस्त अनिधि

पुण्ययोग युग मुनि हुआ जाना ॥ स० ३ ॥

धन्य भाग्य मुझ मन में खिती ।

निरस्त आहार पानी दिया दाना ॥ स० ४ ॥

जाग जानी मुनि देशना दीनी,

पाया समकित लाम अमाना ॥ स० ५ ॥

द्रव्य मारग बतलाया मुनि का ।

भाव मारग किया आप विछाना ॥ स० ६ ॥

आत्म लक्ष्मी कारण समकित

हर्ष धरी बल्लभ मन माना ॥ स० ७ ॥

जिनेश्वर देव का माता की कुम्भसे ज मना, ससार मर के जाँवों को उस समय आहादित होना, इन्द्रासनो व चलायमान होनेपर अवल्य देव देवियों का रागा सिद्धार्थ व घर जाना, लोकाधार उस बालक को सुमेरु पर्वत पर ले जाना, और जन्मात्सन करना, पाठ जाकर बालकको माता के पास रखना, मनार प्रभृति व पुष्पो से प्रभुकी अर्चा करना, धनधान्य से प्रभु के माता पिताओ क निरासगृह की पूर्तिकरना, माता पिता कृपजमो रसव, नामस्थापना, पाठनविधि का उपक्रम तथा युवावस्था में माता पिता के स्वगारीहण के पश्चात् अपन बड़ भाइ नन्दावर्धन से पूछकर दीप्ता लन के पहिछे पहिल का महावीरका जितना वृत्तान्त देखो उसको जन्मकल्याणक क अन्दर ही समझना चाहिय । जन्मकल्याणक की गुरु आत नीचे की ढाँठ से होनी है ।

( दोहा )

जन्म समय जिनेश्वर के, जन्पत्त सुत्रिणा लोक ।

वायु मुलङ्गरी चणे, जानद मगत्र ओत्र ॥ १ ॥

चैन शुकत्र तरत मगी, प्रदक्ष उत्तरा बाग ।

मध्यरात्रि जिन जनमिया, पूण पुण्य फल भाग ॥ २ ॥  
 शान्त दिशा सब दीपता, त्रिभुवन हुआ प्रकाश ।  
 छप्पन दिशि कुमरी मिला, आद चित्त हुलास ॥ ३ ॥

[ देश-त्रिताल-लाघर्णा ]

जनमे जिनदेव मति-श्रुत अवधि शानी

पूरण जस पुण्य की अद्भुत ण्ड निशानी ॥ ज०

अब थान स छप्पन दिशि कुमरी मिल आवे,

देखी प्रभु झगमग ज्योति अति हर्षावे ।

अधोलोक की आठ सवर्तत वायु खलावे,

एक्योजन भूमि अदर अशुचि उठावे ।

घरसावे आठ ऊर्ध्व त्रेक कुमरी फूल पानी ॥ ज० १ ॥

पूरव दक्षिण पश्चिम उत्तर हम चारे,

क्रम से अठ अठ कुमरी निज काम समारे ।

दर्पण कठशाले पक्षा चानर धारे,

चउ विदिशि की चउ दीप धरे उगीयारे ।

चउ मध्य कचक ही आवे कुमरी सयानी ॥ ज० २ ॥

करलावर तीन बनाय विधि से करती,

मर्दन पूरवघर खान दक्षिण भरती ।

उत्तर घर रक्षा बन्धन को अनुसरती,

जिन जिन अम्बा नमो भार पाप रो हर्ती ।

जीवो चिरकाल जिनइ वदे मुख बानी ॥ ज० ३ ॥

हम छप्पन दिशि कुमरी प्रभुक गुण गाती,

कठके निजकथ्य अनादि सदन निव जाती ।

धय देवजन्म हम प्रभुमकि स माती,

आत्म लक्ष्मी कारण समकित चमकाती ।

हथें बहम प्रमु दस मुख मुख दानी ॥ ज० ४ ॥

नन्दीबभन की अनुमति, वरसादान, पचमुष्टिलेच, चतुयज्ञान व प्राप्ति, साठ बारह वष की अति कटिन तपस्या, विहार और मर कर परीषह, उपसर्गों की तितिक्षा यागत् बवलज्ञान से पहिल पहिल कितना वणन है वह सब तीसरे दीक्षाबन्ध्याणक में ही समझाना चाहिये । विशेष स्पष्टता क लिये नाचे लिख पाठ को पढा ।

( वेदा )

जाने निज दीक्षा समय, पिण लोकान्तिक दव ।

कस्यकरी प्रमु बूझव, करत प्रमुपद सेव ॥ १ ॥

जय जय नदा मन् हे, अगशुद्ध जगदाधार ।

धम सीध विस्तारिये, मात्तभाग मुस्तकार ॥ २ ॥

( लावणी )

करसी दान दवे जिन राज महा दा । रे । एक अचली ॥

अनुकपा गुणधार, जन को दारिद्र नार ।

जिन हाथ दान ग्रह भाय तह मानी र ॥ १० १ ॥

एक कोडी आठ लाख, एक जिन दान आस ।

सबछर तक इसविधि दान मानी र ॥ व० २ ॥

वर्ष दोय होय पूर, पूर प्रतिज्ञा में सुरे ।

गहवास वर्ष तीस रह प्रमु ज्ञानी र ॥ व० ३ ॥

नगर सभाव राय, याव दत्र हाजर आय ।

विधि से कराव छान दत्र इदानी र ॥ व० ४ ॥

दय क कलश सार नृप क कलश धारे ।

छान नदिबन कराव ह्य आनी र ॥ व० ५ ॥

वीर प्रभु सज होवे, आतम लक्ष्मी जोवे ।

वल्लभ हर्षमन दीक्षा जिन पानी रे ॥ व० ६ ॥

अनकानक प्रकार व दुस्सह कष्टों को समतापूर्वक सहन करके केवलज्ञान का पाना, दश दवेन्द्र, राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार और १२ ही पर्वदाओं का एकत्र होना, धर्मापदेश द्वारा तीर्थस्थापना का करना, अन्यायदेशों में फिर कर अनन्त बद्धिरात्माओंके अनरात्मा बना कर उन के हृदयों में धर्मबीजरा बोना, यावत् निराण के पहिल पहिले के चरिताश का नाम केवलज्ञान कल्याणक है । सुनिये ध्यान दीजिये—

( दोहा ) समय शुद्ध प्रभाव से, तीर्थकर भगवान ।

दीक्षा समये ऊपजे, मनपर्यव शुभ नाण ॥१॥

त्रिचरे दश विदश में, कर्म सपावन काज ।

परिषद् अरु उपसभ का, सहते श्री जिनराज ॥२॥

गोसाला गोसालिया, चढ कोसिया नाग ।

सूलपाणि सगम दिया, सहिया दु ख अथाग ॥३॥

सुदि दशमी वैशाख की, उत्तर फाण्डुन जान ।

शाल वृक्ष नीच हुआ, निर्मल केवल भान ॥ ४ ॥

( वसत—होई आनन्द बहार )

आज आनन्द अपार र प्रभु कवल पाया ।

कवल पाया घाती सपाया ॥ आज० अचली ॥

उग्रविहारी जगत में रे, जिनवर जग जयकार र ॥ प्र० १ ॥

धर्मध्यान धोरी बनी र, ध्यान कुशल लिया लार रे ॥ प्र० २ ॥

ध्यान ध्यय ध्याता मिली रे, काढे घानी चार र ॥ प्र० ३ ॥

प्रगटे कवल शानक रे प्रगटे आतम सार रे ॥ प्र० ४ ॥

आतम लक्ष्मी पामीया रे, वल्लभ हृष अपार र ॥ प्र० ५ ॥

वस तीम वर्ष गृहस्थावस्थाके, साढे चारह वर्ष १५ दिन छत्रस्थावस्थाके,



पंद्रह दिन कमती साठे उनतीस केवला अवस्था के कुल ७२ सालका  
 सर्वायु पूर्णकर वीर परमात्मा अपापापुरी में आत हैं। यागनिरोध करनेके पहिले  
 अतिम धर्मोपदेश का फरमात है। अन्तिम क्रिया जिसका नाम योगनिरोध है  
 - उसके बलसे योगातीत हालत को प्राप्त कर विनश्वर शरीर को त्याग कर प्रभु  
 निवाण प्रधारते हैं। गौतम स्वामीका विलाप, इन्द्र और द्रवोका धार शोक,  
 नन्दीवर्धनका रुदन, प्रभुका अग्निसस्कार करके इन्द्रोका नन्दीवर्धन को  
 दिलासा देकर प्रभुकी दादाओं का लला, नन्दीश्वरतीर्थकी यात्रा करके द्रवदे  
 वियों का अपने स्थानों पर जाना, यह सब निवाण कल्याणक की क्रिया है।

पहिला कल्याणक आषाढ सुदा ६ दूसरा चैत्र सुदी ११ तीसरा  
 मार्गशीर्षवदी १० चाथा वैशाख सुदी दशमी १० पाचवाँ कार्तिकवदी  
 १५। सुलासा नीच दज है—

### ( दोहा )

तीस तीस घर केवली, छत्र अधिक कुठ बार ।  
 पूणायु प्रभु वीर का, बार साठ निरधार ॥ १ ॥  
 षषुधातल पावन करी, ऊन बध करु तीस ।  
 निकट समय निर्वाण का, जानी श्रीजगदाश ॥ २ ॥  
 पचपन शुभफल क कह, पचपन इतर विचार ।  
 मश्र कर छतीस का, बिन पूठ विस्तार ॥ ३ ॥

### ( कव्वाली )

प्रभु श्रीवीरजिन पूजन, करो नरनारी शुभभाव ॥ अ० ॥  
 क्रिया उपकार जा जगमे, कथन स पार नहीं आव ।  
 तजी मनी मान सब अपना, नमन करी नाथ गुण गाव ॥१॥  
 सहस छत्तास साधवीर्या, सहस चउद साधु गण धाये ।  
 केवली वेक्रिय सत सत सो, वादी सय चार कह लावे ॥ २ ॥

ओही मन पर्यन्त शानी, तरासो पांचसो मावे ।

पूरव चउदधारी शत तीनो, चउदसो साध्वी शिव जाये ॥ ३ ॥

श्रावक एक लाख व्रत धारी, पगुण सठ सहस्र बतलावे ।

श्राविका लाख तिग सहसा, अठारा सूत्र फरमावे ॥ ४ ॥

प्रभु परिवार परिवारिया, अपापा नगरी दीपावे ।

अमा कार्तिक रिख स्वाति, प्रभु निर्वाण सुख पावे ॥ ५ ॥

आतमलक्ष्मी पति स्वामी, हुण निबन्ध उपजावे ।

अटल सपत् प्रभु पामी, बल्लभ मनहर्ष नहीं मावे ॥ ६ ॥

[ उच्च जीवात्माओंके उच्च जीवन की उच्च घटनायें ]

॥ दया दृष्टि और दीनोद्धार ॥

परमात्मा चारित्र्य लेकर देशदशान्तरोंमें विहार कर रहे हैं । उन्होने देखा कि अमुक विकट अटवीके अमुक स्थलमें “ चढकौशिक ” नामक दृष्टिविषय सर्प रहता है । उस कूराशयवाले अज्ञानी जीवने आज तक असख्य निरपराधी जीवोंकी जीवनयात्राको समाप्त कर दिया है । उसकी तीव्र दृष्टिग्वालसे भस्मसात् होकर पक फलोंकी नाह पक्षिगण घडा घड नीचे गिर रहे हैं । इस भयसे उस जगहका आकाशमाग भी बन्द हो चुका है । सख्यानीत जीवोंके प्राणोंका शत्रु होकर, वह विचारा निपट नरकातिथि हो रहा है । यह सोचकर प्रभु उसके उपकारके लिये उसी वनखल आश्रमकी तरफ जहाँ कि वह सप रहता था चल पडे । मार्गमें जाते समय ग्वालोंने उनको रोका और सपूर्ण वृत्तान्त उस सपका वह सुनाया, और साथमें यह भी कह दिया कि इस मार्गसे बदल दूसरा भी मार्ग है जो थोडा बाँका होकर जाता है, आप उधर होकर जाइये जिसस आपको शारीरिक आपत्ति न भोगनी पडे ।

महावीरन शानद्वारा जान लिया कि यह मामर जीव पूर्वमृत दुष्कृतोंके

प्रभावसे सर्वमन्त्री हो रहा है “ परापकार पुण्याय ” यह सनातन पर  
मुख्य तथा हमारे लिये ही है । अन्तमें आप निर्भीकारस्थास उसी रास  
होकर छि चण्डकौशिक विल पर जा एड हुए । सर्प मनुष्यका आन  
देखकर क्रुद्ध हुआ और विलसे बहिर निकल कर साधन लगा । अरे  
जहाँ मेरे भयसे आकाशमार्ग भी बन्द हो रहा है जहाँ यह मनुष्य ! से  
भी मेरे द्वार पर ! !

बस कहना ही क्या था ? एक तो सर्प आर वह भी दृष्टिविष ।  
पहिले तो उसने लाल आँसे करक प्रमुपर आँसोका अहर छोडना शुरू  
किया । और जब इस क्रियास थक गया, तब महावीर प्रमुके चरण पर  
एक मारा । भगवद्दय उस दु ससं जराभी दु खी नहीं हुए, जरा नहीं  
ध्वराए । सत्य कडा है “ वस्पातकालमरता चलिताचलन किं मन्दराणि  
शिक्षर चलित कदाचित् ? । ” परिणाम यह हुआ कि उस उत्कन्टोपी  
महा अपराधी सपका परमेश्वरन शान्त किया । जगदत्सन्त प्रमुक प्रभा-  
वसे उसे जमातरका शान हुआ । परमात्माके समक्ष पत्रह दिनकी महा  
सपस्या करके प्रमुके सुधामय उपदेशका सुनकर वहमूर काय सर्प १५  
दिन के पश्चात् इस रौद्र शरीरका त्याग कर आठवें दवलाक में पहुँचा

“ सिक्त कृपामुधा घृष्ट्या, घृष्ट्या भगवतोरग ।

पक्षान्ते पञ्चता प्राप्य सहस्रारदिव ययौ ॥ १ ॥ ”

( त्रिशष्टिषा पु च )

### पूज्य—पूजक समाज.

प्रमुकी हयाती में अठारह दशक राजा जैनधम क प्रतिपालक थ । श्री  
महावीर प्रमुके मामा चेटक ( चढाराजा ) जो कि विशाला नगरीके

\* “ अवश्य चैव नापाह इति उद्धषा जगद्गुरु । आत्मपीडा भगवय न्यूजुने  
पथा ययौ ॥ १ ॥

मुकुटवद्ध राजा थे, उन्होंने प्रमुक्त समक्ष गृहस्थाश्रमके योग्य श्रावकके वारह वत्त धारण किये थे। भगवद्दशके स्वामी श्रेणिकराजा तो आपके परमभक्त ही थे। उनका लडका कूणिक (अशोकचन्द्र) जो कि बापकी मृत्युके बाद चपानगरमें राज्य करने लगा था, बड़ा प्रतापी साम्राज्यशाली शुद्ध जैनधर्मी राजा था ॥ २ ॥ उज्जैनी का नरेश चन्द्रप्रद्योत महावीर देव का गाढ़ भक्त था।

पंजाब के पश्चिम भागमें " वीतमयपत्तन " जिसे आज कल मेरा कहते हैं एक बड़ा आबाद और अकलीम शहर था जहाँ का राजा उदयन शुद्ध श्रावक था। कूणिक (अशोकचन्द्र) का उत्तराधिकारी उदायी राजा जैनधर्ममें बड़ा ही चुस्त था, और महावीर भगवानकी शिक्षाओंको पूण्यप्रम से पालता था। अन्तमें प्रमुक्त पास दीक्षा लेकर मोक्षाधिकारी हुआ था। प्रदेशीराजा प्रमुक्तको बड़ा जलूस व साथ वन्दन करनेके वास्ते आवा था। राजा दशाणभद्र जहाँ तक गृहस्थाश्रम में रहा पूण्यप्रम से प्रमुक्तसे नाम तत्पर रहा, और अन्तमें जगद्गुरु महावीर परमात्माकी दीक्षा लेकर कल्याणमान हुआ। भगवद्दशके निर्वाण समय अपापा नगरी में किसी कारणवशान् अठारह राजा एकत्र हुए थे, य सब जैन धर्मी थे।

## ॥ महर्षिक श्रावक ॥

( १ ) वाणिज्य ग्रामका इत्त अनन्द नामा जमीनदार आपका श्रावक था, इत्तके पास वारह करोड़ सुवर्ण मुहँ और चालीस हजार गाये थीं। यह व्यापार कर्ममें बड़ा प्रवीण था। इत्तके पाँचसौ जलियान (जहाज) समुद्रमार्गसे भ्रमण किया करते थे। और पाँचसौ गाड़ियाँ लकड़ी घास वगैरह के लिये रहती थीं।

( २ ) कामदेव श्रावक जो कि चपानगरीका रहनेवाला था इसके यहाँ १८ कोड़ अशरफियाँ और ६० हजार गाये थीं।

( ३ ) बनारस का चुलनीपिता नामक श्रावक भी १२ ब्रतघारी था, इसके पास भी २४ कोड सुवण मोहरे और ८० हजार गाये थीं ।

( ४ ) सुरानेव श्रावक भी बनारस का ही रहनवाला था । उसके यहाँ १२ कोड सुवण मोहरे और २६००० गाये थीं ।

( ५ ) चुल्लशतक श्रावक आलभिका नगरी का एक प्रसिद्ध व्यापारी था उसके पास १२ कोड सुवण मोहरोकी और ६००० गौओंकी संपत्ति थी ।

( ६ ) कुण्डकोकिल श्रावक कापिस्थपुर का रहन वाला था । उसकी हैसियत १२ कोड सुवणमोहरोकी और ६००० गौओंकी थी ।

( ७ ) पोलासपुर नगर का रहनवाला सदासुत्र ( कुँभार ) प्रमुक्त श्रावक था, तीन कोड अक्षरफिये और ५०० महीके बरतनोंकी दुकाने इसकी दौलत थी ।

( ८ ) आठवे श्रावक का नाम महाशतक था । यह राजगृही का रहीस था, इसके पास २१ कोडसोनेये और ८००० गाये थीं । इस श्रावक की १३ स्त्रियाँ थीं । प्रधान स्त्रीका नाम रवती था । यह एक बड़े दौलतमदकी लडकी थी । इसको इसक मापकी तरफस ८ कोड सोनेये और ८००० गाये दहेजमे मिली थीं ।

( ९ ) एस ही सावत्थीका रह ७ नन्दिप्रिय श्रावक भी बड़ा सानदान और दौलतमन्द था ।

( १० ) सावत्थीका रहनवाला सेतलीपिता भी १२ कोड सोनेयो की और ४००० गौओं की हैसियत मोगता था ।

इसके अलावा धन्ना, शालिभद्र, धन्नाकाकदी वगैरह अवजोपति साहूकार महावीर प्रमुक्त श्रावक थे । जबुकुमारने ९९ काटि सोनेय छोड कर ५२६ स्त्रीपुदषोके साथ प्रमुके शिष्य सुधमा स्वामीक पास दीक्षा ली थी ।

## ॥ परमात्माका संदेश ॥

श्रूयता धर्मसर्वस्व, श्रुत्वा चैवान्धार्यताम् ।

आत्मन प्रतिमूलानि, परेषा न समाचरेत् ॥ १ ॥

ससार में प्राणिमात्र को सुख इष्ट है, और दुःख अनिष्ट है । विकलेन्द्रियसुख लेकर इन्द्रियभ्रंत सब प्राणी सुख के अभिलाषी हैं, परन्तु सुख की प्राप्तिके साधनों को कैसे संपादन करना, इस बात का समझना जरा कठिन है । कितनेक विचार मोहमूढ पुद्गलानन्दी जीव अपने सुख के लिये दूसरे को दुःखमें डालने के उपाय करते हैं । कोई एक घनक नष्ट होना पर अन्याय चोरी आदि अनाचार करते हैं । कितने ही प्रथम झूठ बोल कर जब किसी प्रसंग में खूब तग हो जाते हैं तो फरेव कर मुक्त होना चाहते हैं । निपापको सपाप और पापीको निष्कलङ्क बनानेका उद्यम करने में अपना कौशल प्रकट करते हैं । अपने माथे पर चढ़ आये हुए आपत्तिके बादल जब दूसरे किसी पर बरस जाते हैं तो धम-हीन अज्ञ खुशी मनात भूले नहीं समाते हैं । परन्तु वे यह नहीं समझते कि—

अवश्यमेव भोक्तव्य, कृत कर्म शुभाशुभम् ।

न क्षीयते कृत कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ १ ॥

( शक्ति ) राग द्वेष क हठ आवेश में आकर धर्म स सर्वथा निरक्षेप होकर यदि पापाचरण किया जाये तो उस कर्मका परमाणु मात्र-स मरु होकर भी छूटना कठिन हो जाता है । अपने दोषको न देखकर सिद्ध दूसरे जीवात्माको सताप देकर और आप खुद अकृत्यसे निवृत्त न होकर अपने अमूल्य जीवनको व्यर्थ करने में भी मनुष्य पीछे नहीं हटता ! ऐसी दशामें उसे उपदेश का देना, सन्मार्गका बतलाना व्यर्थ है । इस विषयमें आचार्य श्री हरिभद्र सूरिजीका एक सूत्र मनन

करने योग्य है उन्होंने याग्य मनुष्य को उपदेश दनका अधिकार बचन करते समय कह दिया है कि—

“ ये वैनया विनयनिपुणंस्ते त्रियन्ते त्रिनीषा ,  
 नावैनैया विनयनिपुणै गक्यते सविनतुम ।  
 दाहात्त्रिभ्य समलममल स्यात्सुवर्णं मुर्णं,  
 नायस्त्रिण्डो भवति कनकं छद्दाह्नमेण ॥ १ ॥”

अथ — जो मनुष्य स्वभावस ही विनयनिपुण होगा उस ही उप देष्टा विनाय ऊचे दर्जेपर चढ़ा सकता है । जो स्वभाव स ही कटोर परिणामी है, छला है, ठिगावपा है, परवचक है, उसे कोटि उपदेश भी मार्गगामी नहीं कर सकता ।

इस बात पर आचार्य एक मर्यादा दृष्टान्त दत्त हैं कि जो सुवर्ण कुछ अन्य कुधातुओंस मिश्रित है परन्तु है जातिका सुवर्ण उसी को सजाव वगैरहके योग स शुद्ध कुन्तन बनाया जा सकता है । परन्तु जो है ही छोहका टुकड़ा उसको छद्-गह-ताडन, तापनादि अनेक उपाय कर क भी काह सुवर्ण नहीं बना सकता । कहायत है कि “ सौमन सावन मलके धोवे गर्दभ गाय न थाय ”

### ॥ ससार स्वरूप ॥

स्थान हुताशन म अरि ईधन, थोक दियौ रिपु-रोक निवारी ।

गौब ह्यो भविलोकन फौ वर, केवलज्ञान मयूख उघारी ॥

लोक अलोक विलोक भये शिव, जन्म जरा मृत पक पसारी ।

सिद्धन थोक वसे शिव लोक, तिन्ह पग थोक त्रिकाल हमारी ॥ १ ॥

किसी भी राष्ट्र समाज या धर्मका उन्नति का प्रधान कारण तदि षयक शिक्षा ही है । सुशिक्षितों को ही अपने अपने देश समाज धर्मकी यथार्थ परिस्थितिका मान हा सकता है । वही उसका उपाय सोच सकते

हैं। ऐसे सुशिक्षित मनुष्य भ्रष्ट जातिमें जितने ज्यादा होंगे उतना ही अपना-अपने राष्ट्रका समाज का या कुटुम्बका भंग कर सकेंगे।

वर्तमान समयमें देखा जायाना आ एशिया के हर्ष का वर्द्धक हो रहा है। उसका कारण आज शिक्षाप्रणाली के सिवाय अन्य क्या माना जा सकता है ? जैसे सूखे हुम्नारे सामने चक्कर लगाता हुआ दृष्टिगोचर होना है ठीक उसी प्रकारसे सारा ससार नीचेसे ऊपर ऊपरसे नीचे उदयसे अस्त अस्तसे उदय इन पथाय धर्मों का वदन करता चला जा रहा है।

ससार का कोई पदार्थ स्थिर नहीं सृष्टि क्रम यह बतला रहा है। समय यह कह रहा है कि वह एक न एक दिन नीचे आयेगा, गिरेगा, उसकी जड़र अवनति हागी जा ऊपर गया है, इस विकराल कालकी चालमें बच है तो परमात्मा बचे है, बाकी सब ससारी जीवोंका चाहे वह इन्द्रसे भी ऊपरक अहामन्द्र क्यों न हों ? एक रास्ता है।

ससार और ससारी जीवात्माका ऊपर जाना नीचे आने ही के लिये है। जिस उन्नति का अन्त अवनति पर ठहरा हुआ है वैसे ही अवनति के बाद अन्य उन्नति है।

इस नियमका उल्लंघन वह कर सकता है जा ससारस मुक्त होगया है, वरन् ससार उसीका नाम है जा कोई इस नियम का उल्लंघन न कर सकता हो। कविया की मान्यता है कि जो जल समुद्र से उठकर माप हारुत बादल बन कर अहकार से मत हुआ हमारे ऊपर आकाश में घूम रहा है, इतना ही नहीं, बल्कि-गजना और तजना कर रहा है, कौन नहीं जानता कि यह एक न एक दिन नीचे आवेगा, और वहाँ जायगा जहाँ स आया था।

बस यह ससार ही नहीं किन्तु ससार चक्र भी है। आपने अब इसका मतलब अच्छी तरह समझ लिया होगा, अफिर कहना श्रोताओं की बुद्धि की अवस्था करना है। कवि कालिदासने लिखा है—



“यात्येकतोऽस्तशिरार पतिरौषधीना-  
 माविहृतोऽरुणपुरम्भर एकतोऽर्क ।  
 तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां,  
 लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥१॥”

मिय बधुआ ! जा गिरा हुआ है उसकी अवश्य उन्नति हार्गी, मान  
 लो कलियुग हसी लिये आया है कि सतयुग का माग साफ और निष्क  
 ष्टक बनजाय ।

### समय की परिस्थिति ।

देखो कालकी गति वैसी निचित्र दीख पडती है, अब यहां दिन  
 होता है तो अमेरिका में रात होती है । ठीक इसी प्रकार स जब उन्नति  
 का सितारा भारत वधपर चमकता था ता अमेरिका वीगरह का कोई नाम  
 भी नहीं जानता था ।

शासन नायक वीर प्रमु के निर्वाणक कुठ वर्ष पीछे अशोक राजा का पीत्र  
 सम्प्रति नरश हुआ कि जिसने अपने अस्तइशासन क बलसे अमेरिका प्रभृति  
 देशो में भी “स्यादाददर्शन ” का प्रचार किया । उन उन दशो में  
 अपने सुशिक्षित उपदंष्ट्राओं को भेज कर जैन धर्मके उन गूट त वों को  
 समझाया जा उन क लिये अश्रुत पूर्व थे । आज भी उन देशों में स  
 निक्लती हुई तीर्थंकर देवों की प्रतिमाये इस सत्य घटना की बराबर  
 सत्यरूप से गवाही दे रहीं हैं ।

### विद्या और दान

इस वक्तव्य का सारांश यही निकला कि ससार का (ससार  
 वसतिपदाय मात्र का ) परिवर्तन स्वभाव है । जिस जनपद का नेता  
 न्यायशील होगा, जहां की जनता अपने हयोपादय की समझने वाली-  
 होगी, उस का अवश्य उदय होगा । प्राचीन समय में लोग विद्याव्यसनी

होते थे, घन व्यय करने में उदारता प्रकट करते थे, इससे वह अपने समाज के ह्रास के कारण का देखते ही तत्काल उपाय करलने थे। आज कल यद्यपि लोग घनसम्पत्ति से मुझी हैं तो भी तादृशशान सम्पदा के न होने से देशका जैसा चाहिये वैसा भला नहीं हो सकता।

हालां कि आज भी भारत के दानशीर दान देने में अपनी प्राचीन उदारता से पीछे नहीं हटे। ऐतिहासिक साधन साक्षी देते हैं कि हमारा यह सम्य सभार पैसा खर्चने में किसी तरह से भी हाथ पीछे नहीं हटाता।

### ॥ आदर्शजीवन ॥

यदि काह हममें पूछे कि जीवन का अलङ्कार क्या है? तो हम नि सकोच होकर कह सकते हैं कि चरित्र ही जीवन का एक मात्र अल कार है। चरित्र आत्मा की एक विशेष शक्ति है, इसी शक्ति के प्रभाव से हमारी नीच भावनाओंका दमन होता है, हृदय क अपवित्र भाव दूर होते हैं, हम पवित्रता प्राप्त करनेक लिय व्याकुल हो उठते हैं, और सत्यकी स्राज में प्राण तक दानको तैयार हो जाते हैं। इसी शक्तिबल के प्रभाव से हम भीषण प्रणभनोंका सामना करने क लिये लडे हाजाते हैं, सम्राट की अपकृपा से भी विचलित नहीं होते, और कठोर जीवन सम्राम में जयलाभ प्राप्त करसकते हैं। सभार में जितने प्रतिष्ठित व्याक्ति होगये हैं व सय इसी अद्भुत शक्तिबल के प्रभाव से पूज्य हुए हैं। घन और ऐश्वर्य द्वारा किसी व्यक्ति ने किसी कालमें भी महत्ता प्राप्त नहीं की। चरित्र ही महत्ता प्राप्त करने का एक मात्र सोपान है।

यह ईश्वर प्रदत्त शक्ति है, यही विश्वका नियता है, इसी क भयसे चन्द्र सुय उदय होत है, वायु संचालन करती है, इसी स निमल पवित्रता का स्रोत प्रवाहित होकर पापमय जगत को स्वर्गमृभि में परिणित कर देता है। वही इस अद्भुत शक्ति का जन्मदाता है। नहीं तो क्षीण

काय दुबल मसृष्य किस वस्त्रसे बलवान् हाकर वह सार रशायों और अपन प्राणोत्तक क विसर्जन कर दन में भी कातर नहीं हाता ।

एक 'यायका अनुष्ठान करने स सारा ससार तुम्हारा सहायता करने क लिय तैयार हो जावेगा । उस न्यायानुष्ठान क प्रतिष्ठिति करने में तुम्हारा सवस्व ही क्यों न चला जाय तो भी तुम्हारे हृदय में लक्ष्मात्र भी कष्ट न होगा किन्तु एक अन्याययुक्त आचरण करनेस तुम्हें सी विन्दु ओक काटने समान पीडा हागी । तुम्हारा हृदय अनातिका घर बन जायगा और तुम ससारको नरक क समान मापण स्थान समझाग, तब तुम सोचागे कि तुम ससार में अकल हा, सारा ससार तुम्हारी ओर घृणापूर्ण दृष्टि दस रहा है, काइ भी तुम्हें आश्वासन द्वारा शान्ति देनेके लिये प्रस्तुत नहीं । ससारक सपूर्ण व्यक्ति गण तुम्हारी पापमय सगति स दूर भागना चाहेग । इसा प्रकार 'याय और अ'याय में भी भेद है, भगवान का भक्त भारी विपत्ति में भी अन्याय का परित्याग कर के 'याय का अनुसरण करता है, इष्ट का और काई कारण नहीं वह 'याय क बीच परमात्माकी शक्ति दसकर ही उसपर अनुराग करता है ।

## ॥ शिक्षा का प्रयोजन ॥

अनक मातापिता अपन पुत्रका इस आशा स पाठशाला में भेजत हैं कि मेरा बटा प'ण्डित कर कोई ऊचा पद प्राप्त करगा, किन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिय कि उनका पुत्र चरित्र गठन ही स गाना बन सकत' है । इस विषय की उपेक्षा करना अपनी सतान पर घार अन्याय करना है । चरित्र गठन ही शिक्षा का मूल उद्देश्य हाता चाहिये । यह बात सत्य जान पडती है कि विद्वान् होने स उच्च पदकी प्राप्ति होती है, किन्तु चरित्र क अभाव में वह उच्चपद सुरक्षित नहीं रह सकता।

अत एव पुत्रको चरित्रवान् बनाने क लिय चरित्र गठन पर ध्यान रखना मातापिताका प्रधान कर्त्तव्य है ।

सम्राट स लकर एक सामान्य किसान के बाउक को अपने व्यवसाय में सफलता प्राप्त करन क लिये ज्ञान और चरित्र की अत्यन्त आवश्यकता है । इतने विवचन स सिद्ध हुआ कि क्या राजकुमार और क्या किसान के बालक दोनों को शिक्षित होना बहुत आवश्यक है ।

अनेक व्यक्तियोंकी धारणा है कि पंतुक व्यवसाय अथवा किसी अन्य व्यवसाय में शिक्षा की आवश्यकता नहीं है । मैं पूछता हूँ कि मानव समाज को अज्ञान क घोर अधकार में रखनेका किसे अधिकार है ? किसान के बालक और राजकुमार के अत करण में जिस प्रमाण से ज्ञानप्रभा प्रकाशित होती है उसी परिमाणानुसार हमारे कार्यकी सिद्धि हाती है । चरित्रवान किसान का बालक क्या चरित्रवान् राजकुमारके समान सुन्दर नहीं है ? तब फिर एक को शिक्षा देकर दूसरे का उधसे वचित रखनवाल तुम कौन हो ? यह बात अवश्य स्वीकार की जा सकती है कि व्यवसायसवधी शिक्षा सबका एकही सी नहीं दी जासकती । राजकुमारका राजनीतिसवधी, और किसान क बालक का कृषिसवधी ही शिक्षा दना उचित है, किन्तु जा शिक्षा ज्ञानवान् बनाती और चरित्र गठन करती है वह सब एक ही ढंगकी देना उचित है, इसा शिक्षा का नाम शिक्षा है ।

## ॥ परमार्थ और देशसेवा ॥

खान की मिट्टी जिसको खान में स खोदकर उसके टुकड़े टुकड़े किये जात हैं, इतना ही नहीं नरन् उसको गवों पर चढाया जाता है, पानीमें भिजो कर उसे पेटोनाचे म थन किया जाता है, चक्रपर चढाकर सूख दुमाया जाता है तो भी शाबासी है उस सहनशील जाति को कि जा इतने

कष्टों को सहन करती दुइ भी पात्र बन कर ससारकी स्वाथसिद्धि करती है ।

और भी सुनिये, कपास के डोढाको ताड़ कर घूप में और धूल में फँक दत है, उसकी अस्थियें ताड़कर सार निकाल लिया जाता है, उस सारमूत कपास को भी घूप में फेंक कर सूव तयाया जाता है । मार मार कर इसके पीछे पीछे शुद्ध किये जाते हैं, यत्र में वीला जाती है, पिता—पुत्र का आजन्म वियोग किया जाता है, लाड की शूलीपर चढाया जाता है, अनेक औजारों से मारी पीटी जाती है तो भा वह उपकारी पदार्थ बह बन कर कुछ ससार मरक नरनारियोंके गुण प्रवेशों का टकती है । तो अर—निसार ! अरे ससारसार जीवन ! मनुष्य ! सचेतन होकर अमूल्य मानवभव स कुछ भी निज परका उपकार न करेया तो मुझे और क्या कहे ! एक कविता नीचे दर्ज है उसे सुनना जा बाद लेगी मरजी—

मनुष्य जन्म पाप सोवन विहाय जाय,

स्रोवत करो रनकी एक एक घरी है ॥

किसीने यह लुकमान से जाके पूछा जरा इसका मतलब तो सम साइयेगा ।

जमाने में कुत को सब जानत है,

वफादार भी उसको सब मानत है,

ये करता है जा अपन मालिक प कुरबॉ,

खिलाना है बच्चों का घर का निगाहवॉ ॥

मरा है यह खून महश्वत रगों में,

न देला सगों में जा देला सगों में ॥

पडे मार खाकर भी यह दुम दवाना,

कि दुशवार हो जाय पीछ छुडाना ॥

जगत्में ह मशहूर इसकी भलाइ ।

मगर नाममें है क्या इसक बुराइ ॥

किसी आदमीको कहे हमजो कुता ॥  
 तो मुहपर वही दे पलटकर तमाचा ।  
 कहा उसस छकमान ने बात यह है ॥  
 खुली बात है कछ मुश्ममा नहीं है ।  
 यह माना है बसक वफादार कुता ॥  
 बदा जौ नीसतार और गमस्तार कुता ।  
 फकत आदमी पर है यह जानेसारी ॥  
 मगर कौमकी कौम दुइमन है भारी ।  
 यह रखता है दिलमे मुहध्वन पराइ ॥  
 सटकते हैं इसकी निगाहोमे माई ।  
 नजर आवे इसको अगर गैर कुता ॥  
 तो फिर देखिये इसका तौरी बदलना ॥  
 न जिसने कमी कौमका कौम माना ।  
 कहे क्यों न मरदूद उसको जमाना ? ॥  
 बुरा क्यों न मानेगे अहते हमीयत ।  
 कि—औरोसे उलफत सगोसे अदायत ॥

### ॥ विमर्श - परामर्श ॥

भारत वयमे शुभकार्यों के लिये रूपय की कमी नहीं है, किन्तु ह .  
 लोगोमे देशभक्ति तथा परापकारी मनुष्यों का अभाव है, जिनके बिना  
 हम लोगोको समितियों तथा सुधारक कार्योंमे बाधा पडती है । “शास्त्रो”  
 मे विद्यादान सबसे उत्तमदान कहा गया है इसी लिये जो लोग इस  
 पुण्यकार्य अर्थात् सांज्ञनिक शिक्षा प्रदान का यत्न करेगे वह वास्तव मे  
 धर्मात्मा कहे जा सकत हैं । भारत सन्तान अपने दान एवम् उदारता  
 के लिये प्रसिद्ध है । पुरान मप्रमन्दिर आदि चारों ओर दहाडोमन

रहे हैं। और नय मन्दिरा और धर्मशास्त्रों के बनाने में एक परस्पर के सिलाने पिलाने में अनुचित रीतिस " दान का अपरिमित धन व्यय किया जा रहा है। यदि वही धन उचित रीतिस शिक्षा की उन्नति में व्यय किया जाय अर्थात् दशको उन्नति के सिस्तरपर पहुच जाने में अधिक काल नहीं लगेगा। साधारण गणना से प्रतीत होता है कि इस समय " महाराजाओं, राजाओं आगीरदारों रक्षों तथा साधारण मनुष्यों " के दानकी संख्या प्रतिवर्ष सत्तर करोड़ से कम नहीं है। इस अनन्त धन का उचित रीतिस व्यय ढाना चाहिये। इस कार्य की सिद्धि के निमित्त प्रत्येक देशवासी को उचित है कि अपनी लेखनी द्वारा लेख प्रकाशित कर तथा उपदेशकी सहायता से जनसमूह तथा रक्षों का उपकार करे।

### साम्प्रदायिक नियंत्रण

किसी भी सम्प्रदाय के ऐतिहासिक वर्णनों का अवलोकन करने से प्रायः इस बात का पता लगता है कि सम्प्रदाय की बारी नेताओं के ही हाथ में रही है। नेताओं से हमारा आशय धर्म प्रचारकों से है। और विशेष कर यह लोग साधु, संन्यासी, पोष पादरी, पण्डित, राज गुरु प्रभृति नामों से विविध वेशों से पहिचान जाते हैं। उन में से जिस किसीने जिस धर्मको अपना मानकर स्वीकृत किया है वह उसकी हर प्रकार से रक्षा करता है जिस प्रकार कृषक बड़ी सावधानी से अपने क्षेत्र की निगहबानी रखता हुआ अन्यान्य पशुपक्षियों तथा यात्रियों से बचाने की योजना करता है। इसी प्रकार वह धर्मनायक भी अपने सम्प्रदाय को मलिन बनाने के प्रयत्न में लगा रहता है।

हां! इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि भारत वष में छम्पन लाख साधुओं की संख्या मानी जाती है और इन का भार विशेष कर गृहस्थों पर ही है। इनमें से सन्मार्ग का सदुपदेश देनेवाले कितने हैं!

और अनर्गलशब्दों का प्रयोग कर तथा उत्तम पदार्थों को खाकर मानव जीवको इतिश्री तब पहुचाने वाले किनने हैं ?

पहिल समय के साधु अपने कमक्षत्र-तप त्रय ज्ञान ध्यान-ब्रह्मचर्य -आतापना प्रिय आदि योगों ने विचर कर अनेकानेक तरह की शक्तियाँ प्राप्त करत थे, और उनके बलसे अपने शासनकी ध्वजा पताका फहराते थे ।

## ॥ आत्मशक्ति ॥

शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है कि चार ज्ञान के धारक उसी जन्म में जिनकी मोक्ष होनेवाली है, ऐसे श्रीगुरु गौतमस्वामी जब सूर्य की किरणाका सहारा लेकर अष्टापद पर चढ़े तब वहाँ जो १५ सौ तपस्वी तप कर रहे थे, उन्होंने उनका चमत्कार को देखकर श्रद्धापूर्वक उन को प्रणाम कर अपने गुरु मान लिये । नीचे उतरने पर उन सबने हाथ जोड़कर पूजा प्रभु । हम १५ सौ तपस ५००-५०० सौ कि टुकरी करके यहाँ विजन अगल में रहते हैं । अनेक प्रकारकी तपस्या करके सुखे फल फूल सात हैं, तो भी १-०-३५, बड़ीसे ऊपर नहीं जा सकते । और हमारे देखते ही दखत आप लुच्छ सी वस्तु का सहारा लेकर ३२ कासक ऊँचे इस पक्षुड क शिखर पर कैसे चढ़ गये ? क्षीराश्रव लब्धिसप्तत्र गणधर महापुत्र न बड़े प्रभसे सकाम और निष्काम तपका स्वप्न समझाकर कहा-जो तप सिर्फ आत्मनन्वात्मक स्थि किया जाना है, और जिसमें ज्ञानबोध की मुख्यता होती है, उस निष्काम अर्थात् इच्छागहित तपके प्रभाव से जीव में अणिमा; महिमा गरिमा, लघिमा; प्राप्ति, प्राकाम्ब, ईशत्व, वसित्व यह आठ प्रकारकी लब्धि उत्पन्न होती है ।

अणिमा महिमा चैव, गरिमा लघिमा बद्ध ।

प्राप्ति प्राकाम्बमी-तत्र भवन्ति चाष्टमिद्वय ॥ १ ॥



इस बात को सुनकर वह सबके सब तपस्वी श्रीगुरु गौतम स्वामीजी के पास दीक्षित हुए मणधर महाराज ने सिर्फ एक ही पात्र में क्षीर लाकर उन सब का सिन्हाह । उन १५०० मनुष्यों का भौतम करने उतने पात्रकी रीर स ही तृप्त कर दिया । इस बनाव को लक्ष कर उन्होंने बहुत लाभ उठाया । उस ही कहते हैं राजा विश्वामित्र अपने सैनिकों को साथ लेकर वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में गये । ऋषिने राजासे भाजन देना चाहा, राजान इनकार करत हुए कहा मैं अपन सहचारियोंको भूता रखकर अकेला भाजन नहीं करूंगा । वशिष्ठ बाले हम तुम सबको अपना अतिथि बनारहे है, राजा न हस कर कहा आप इस छातीसी क्षीपकामे रहकर असल मनुष्य और पशुपत्नियों को क्या खिलायेगे ?, वशिष्ठ न कहा तुम निश्चि रहो हम सभी अतिथियोंका सन्कार करगे । निदान सभीने ऋषिवर्योता स्वीकार करके स्नान किया । मधर ऋषिजीने अपनी छोटी चोपड़ी मेंसे त्रिभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट, रोचक, पाचक भाजन दकर राजाका और उनके साथक असल्य मनुष्यों को तृप्त किया ।

### सिंहावनासन ।

पूर्वकालके साधु सन्यासी ऋग ऋषिजीने विज्ञान में, पौराणिक विज्ञान में, पदार्थ विज्ञान, धर्म दर्शनाक स्वरूप परिभाषण धर्मापदेश देने में, नये नये ग्रन्थों के निमाण करने में, योग विद्या, मन्त्र विद्या, छान्दोग्य, न्यूनप्रधान भूतत्वों की विद्या, सपत्निशास्त्र, कृषिशास्त्र, कोशल्य, नीतिशास्त्र, राशिविद्या, अर्थाधिकारशास्त्र, माणमन्त्रोपनिषद्, परिज्ञान, दामोदरविद्या, प्राणायाम शास्त्र, योग-परमेश्वर स्वरूप द्वारा, सदैव त्रय पराजय, समारयाना, साधना । उक्त साकार्योंमें उक्त रहते थे, उन सब बातों का तात्पर्य उक्त है । विद्याशास्त्र के अन्तर्गत व्यापार, उद्योग, हासिक शास्त्रों के बदले नववत्त शास्त्रों, पाराणिकादि परिज्ञान तो नामशेष

हो रहा है, परार्थविद्या तो अग्रजा के घरोंमें, दशनशास्त्रों का उदहा  
 सा रही है, उनका भाव ही कौन पूछे ? धर्मापदेश है तो समासमें अपनी  
 वडाइ और महत्ता उढाने क लिय, ग्रन्थ विनाश न बदल अगर प्राचीन  
 ग्रन्थियों के बनाय पद वाचे ही जावे तो भी बल है । तहां तक कल  
 प्तय ! माय सारा ही चक्र ऊधा चल रहा है, जिन के पूर्वजोंने अपन  
 विविध विज्ञान द्वारा राजा महाराजा श्रेष्ठ रईस लोगों को सम्मार्गगामी  
 बनाया था, आज यह अपने पूर्वजों की कीर्तिरूप जायदाद का खा खा कर  
 पापी पटकी घठ उतार रहे हैं । इस बात का स्पष्टीकरण नीचे के पद्यों  
 से भली भांति हो सकेगा ।

सुना गया है कि भगवान् श्रीमन्—“ महावीर स्वामी ” के समय में  
 ३६३ मत्त थ, परंतु वर्तमानकाल क १९१३ वादके समय में उन  
 मत्तोंकी सख्या भी ३६३ म बढ़ कर आज कल ३००० तक  
 पहुंच गई है ।

संसार में साधु सयासी—उदासी निमज—वैरागी—भ्रष्टी—भुनि—दल  
 चारी—नापस सपस्वी—नाग अबधून — सत — महत्त — यति — भिन्नु  
 इत्यादि नाम धारक मनुष्यों की सख्या जगत् में ५६ लाख जिननी  
 सुनी जाती है ।

[ विशष क लिय दक्षा दशदशन,  
 के भूरि सख्यक साधु, जिनके पथ भद्र अनन्य हैं ।  
 अबधून यति नागा उदासी, सत और महन्त ह ॥  
 हा ! व गृहस्थास अधिक है, आज रागी दीसन ।  
 अत्यन्त ही सचे विरागी, ओर त्यागी दीखने ॥ १ ॥  
 जो कामिनी-वाञ्छन-न छूटा, फिर विराग रहा कहा ।  
 पर चिन्ह तो वैराग्य का, अब है जटाओंमें यहा ॥  
 भूलो मत कि जटा रक्षाकर, साधु कहलान लये ।

चिमटा लिया भस्मी रमाइ, मागन खान लग ॥ २ ॥  
 सख्या अनुधागी जनाकी, हीनतास बढ रही ।  
 शुचि साधुन पर भी छुयशकी, वाग्मिा है चर रही ॥  
 भस्म लेपन स कहीं, मनकी मलिनता छूनी ।  
 हा ! साधुमर्यादा हमारी, अब दिनोदिन टूटनी ॥ ३ ॥  
 यदि य हमार साधु ही, कनक्य अपना पालन ।  
 तो दशका बग कभी का, पार यह कर गन्त ॥  
 पर हाय ! इन म शान तो, सब रामका ही नाम है ।  
 दमकी चिन्मम लो उठाना, मुख्य इनका काम है ॥ ४ ॥  
 ( मैथिलाशरण गुप्त )

एक महापुरुष का कथन है कि—

दुःखि विसय पसस्त, दुःखिविहु धणधन सगहसमेया ।

सीसगुरुसमदांसा, सारिअइ भणसु का केण ? ॥ १ ॥

( भावार्थ ) ससारी जाव-जगत्में-साधुओं क निमित्तस, उनके कपनसे मन्त्रिर्ष ( ६० ) मोड रूपका यग हाता है ।

[ दस्ता “ ससार नामक मासिक पत्र ” ]

जो साधुसतका सवा करन ह उन क उतलाय दुय रास्त पर चलने है, उनक कन्नेमे लगलो कोणी रूपसे खच कपत है । वह किस वास्त ? सधुओं क राय उनक क्या नाना हे ? क्या खचप हे ? कहना हमारा कि धन । सिवाय धर्म क जहा ओर किसी भी किस्म का सबाध हागा नह दोनां न ह हाणि ही पदुचेणी । अन्वय सिद्ध हुआ कि ससार में साधु महात्माओं का सचय परिचय गुरुत्व को अनधिकाल का दुर्वासनाओं से वचानवाग्य ह, हटाने वाला है । परन्तु साधु अन्त सधुधम म कायम होना चाहिये । अगर ऐसा न होगा वी ह्यम क्या ? सिध्व अर्थात् गुरुत्व क एक पत्नी, अर्थात् गुरुत्व



## ॥ पूर्णपर्यालोचन ॥

प्रथम यणन किया जा चुका है कि अपने विषय विद्यावन्त, विद्वत्तपोबलस, अममत्त त्रिशाकाण्डस, अमतिवद्ध विहारस सन्य उपदशोति, विविध तिलिनाओक परिशीलन स, महात्मा बुम्पोने प्रथम अपने उच्च निर्मल, निष्काम, निर्विकार, एवम् निदाघ जावनस सत्तारक अपना अपुरागी किया है और तत्पश्चात् ही उनका धर्मोपदेश द्वारा मर्गो सुमान्नी किया है । एस ही सत्तारक अग्रगण्य गृह्य महासुभायोको भी आवश्क है कि वह दूसर का आदेश बनान क प्रथम अपने जीवन को असधारण बनान का हृद प्रयत्न करें, वस सपूर्ण सत्तार उस्तका दास है ।

यह बात भी अवश्य स्मरण रखनी चाहिय कि कर्म शिक्ष ही बाकी नहीं है, चतुर आदमी दुराचारी भी हो सकता है, धर्महीन म तुष्य जिबना चतुर हागा उतना ही कल्याचारी होगा, अत एव शिक्षा की नीव धर्म और सच्चरित्रता पर स्थित होनी चाहिय, कोपी शिक्षा बिही भी कामकी नहीं, उससे बुरी वासनाये दूर नहीं हो सकती । बुद्धि की वृद्धि का (साधारणतया) सच्चरित्रता पर बहुत थोडा प्रभाव पडता है । बहुबारे लिखे पडे मनुष्य अदूरदर्शी अपययी और आचारमृष्ट देखनेमे आते हैं, अत एव यह अत्यंत आम यक है कि शिक्षा धार्मिक और मैतिक सिद्धांतों पर स्थित हो । [ इसका अधिक विस्तार मितव्यय तासे देखो ]

अब देशसवा क हिमायतियों का गौर कर क साचना चाहिय कि प्रस्ता अवसर फिर आना मुकिल है "स जाता येन जातेन याति वश सदुग्रतिम्" ।

धाकी ता विदशी शिक्षा पाकर भी विदश भ्रमण करके भी अगर दशसैवा नहीं की ता भाह ! तुझे क्या कह ! कविरत्न का कहना है—

अमरीकनों के पात्र जूट, साफ कर पंडित हुए ।  
 सचे स्वदेशी मानसे, फिर भी नहीं मडिब हुए ॥  
 दृष्टान्त बनत है अधिक, वह इस कहानत के लिये ।  
 बारह वरस दिखी रह, पर भाडही शोका किने ॥

जर्मनी में सैनाबिभागवाले लोग और वाणिज्य लोग कबूतरों तथा अन्ध बालिब विडियों को शिक्षित करने आर बाल तरह से अपने काम के योग्य बनाने की चेष्टा कर रहे हैं । वे इनके गले में चिह्नी तथा पत्तों के रन्धाड से बांधकर एक जगह से दूसरी जगह लज्जान की शिक्षा देते हैं । वाणिज्य लोग अपनी शाखाओं में जो किसी नदी के पार हैं नौकर आदिकी प्रतीक्षा में कर अति आवश्यक वस्तुओं का इन्हीं फक्षियों के द्वारा भेजा करते हैं । उसी तरहसे सना विभाग भी बुद्धके समय शिक्षित कबूतरों से समाद भजन का काश उठा है । समाचार पत्रों में पद लिखे लोगों को यह सबाद मिला हागा कि हाल में जो मद्रशनी जर्मनीमें हुई थी उसमें १०, ००० शिक्षित कबूतर लाये गये थे जो निश्चिन्त स्थानों पर समाद पढ्वाते थे । इन कारणों से जर्मनीमें एक कबूतर का माल्य वष के मनुष्य की अपेक्षा फहीं अधिक मूल्य है ।

### जैन धर्ममें गृहस्थाश्रमके पांच नियम ।

१-निष्कारण निरपराधी जीव को जानकर न मारना । और जिस न अपना अपराध किया है अहा तक हा सके बसपर भी क्षमा करनी ।

२-अज्वल वा सवया झूठ न बालना, अगर निर्वाहन होसक तो कन्वा, गौ, भूमि, इन तीन चीजों के विषय में तो झूठ न बोलना और अमानत गुप्त न करना, ४ शही गवाही न दना ।

३-मालिक की इजाजत के सिवाय किसी की चीज पर अपनी मालिकी न करना अथवा चोरी न करना ।

४ स्वच्छा सत्ताय वर—बद्धा गमन का त्याग करना ।

५—अनन्यपति का सन्ताप—इच्छानिरोध मृगणा का घटना ।

अनन्यपति की प्रीति और प्रकृत शिखा यह ही है कि सब अशिवाओं का चाह वह छाट हों बाहें बड़ हों, अमार हों या गराव हों, सबका भला वारा, सब को अपने आत्मा व समान माना । विना प्रयाजन किसीका मन सताओ "आत्मन प्रतिदूलानि पयो १ समाचरु" जिसको तुम सताओ वर कभी न कभी तुम्हारा भा तुकसान करेगा, सब वक्त तुमरा बहुत बड़ा क्लेश होगा ।

“अन्य साव जम गर दू गर काइ मरी सुन ।

हे यह शुम्भक का सता जया कह मरी सुने ॥”

( १ ) जैनधर्म का स्वरिकार वर क कुमारपाल जस राजा न दशा मे रूपा १०३ भुद्र प्राणियों का पी र रा का है, मगर जब देश रक्षण का काम पडा तब तलवार त्तर मदान म भा उतर है । कपि दत्तन रामन लिखा है कि “जने का दयान सनार का कमभार कर दिया है” मगर यह सत्यम मूठ है, जैन क शांदास पुस्तकस त्रावर सिद्ध होता है कि मनुवार के परम भक्त द्वाण्ड उत धारक श्रावक राजा चेरक (बडा) न १२ बधनक कृणिक राजा स सगम किया ह । उदासी क्क म मालवश उभयना पति चम्परातन म जना ह । सप्रात राजान त्रिखण्डभूमिका विजय किया ह । कुमारपालन सपात्रलभक राजारा , (शाकमरी) सामरके नरपाका, चन्द्रावनी क राजा सामन्तसिंह का जीता है । इतना हा नहीं कि उनक जनमत्रि मा लडाया मे विजय पात रह है, कुमारपालन मुख्य प्रधान उभय त्तर मे ही मारा गया था । कुमारपाल क पूव गुजगत क राजा देव हा चुफ है, उन का मंत्री विमलशाह म्म बहादुर था, तीर आर तलवार का लरर शत्रु आ का उसाहस पराजित करता था । सिध का चडाइ मे विमल की

वहादुरी सहै सिन्धुपनि पक्का गया था । प्रसिद्ध मंत्री यस्तुपाल तज-पाल न रह कर गुजरात की तरफ जाते हुए यत्रों को परास्त कर के फीछे छोड़ा था । मेघाड करी महाराणा प्रताप जब सब बरह से हारकर मुगल बादशाह से सन्धि करने का तैयार हुये थे तब उस को महायत्ता देकर फिरम उरमाहित करनाला मामाशाह शारवाड जैन-धर्मका ही उपासक था । प्रसिद्ध है कि १२ वर्षक हाथी घोड सहित २५ हजार फौजी मनुष्यों का पालन हो तके इतनी सहायता देकर मामाशाह सेठन भारत क अस्त होत सूर्यका थाम लिया था । इतना ही नहीं बल्कि अपने राज्यका किमी कारण सर छोडकर चित्तौडमे आय हुए बहादुर शाहको आपत्ति के समय किमी भी शक्य विना एक लाख रुपया देकर उसे सुखी करनाला भाग्यवार कर्मशाह भी जैन ही था ।

तीर्थकर दयोंका यह ही उपलब्ध है कि सभीका लाभ चाहो । तुम्हारा सुदका भी भरा होगा । मनस न मनस और कर्मस जीवमात्र क साथ मैत्री रखना । सदाकाठ सत्यभाषी रहा । बिद्वान यह लक्षिणावत शस्त्र है, इसमें कीचड मत भरो, अगर हा सक तो कामननुका दून भरा, यह तुमको याञ्जिनकठ का दनेवाग होगा ॥ १ ॥

### जैनधर्मका अहिंसातत्त्व ।

जैनधर्म के सश्र ही ' आचार ' और ' विचार ' एक मात्र 'अहिंसा' क मन्त्र पर रने गये हैं । यों तो भारत के ब्राह्मण, बौद्ध आदि सभी प्रसिद्ध धर्मों ने अहिंसा का ' परम धर्म ' माना है और सभी ऋषि, मुनि साधु सब इत्यादि उपदेष्टाओं ने अहिंसा का महत्व और उपादे यन्व बतलाया है; तथापि कस सत्य को शिमना विष्टृत, शिमना श्रम, शिमना गहन और जिनना आचरणीय जैनधर्म न बनाया है, उतना अन्य किसी ने नहीं । जैनधर्म के प्रवक्तकों ने अहिंसातत्त्व को



परम सीमा तक पहुँचा दिया है। उलान केवल अहिंसा का बंध मात्र ही नहीं किया है परन्तु उसका आचरण भावेंसा ही कर दिया है। और और धर्मों का अहिंसा तब कबल कायिक बन कर रह गया है परन्तु जैनधर्म का अहिंसा बल्ब उससे बहुत कुछ आगे बढ़कर वाक्मि और मानसिक से भी सर-आत्मिक रूप बन गया है। औरों की अहिंसा की मर्यादा मनुष्य और उससे जादह हुआ ता पशु-पक्षी व जन्तु तक जाकर समाप्त हो जाती है, परन्तु जैनी अहिंसा की को मर्यादा ही नहीं है। उनकी मर्यादा में सारी सच्चराचर जीव जालि समा आति है और तो भी वह वैधी ही अमिब रहता है। वह विष की ब्राह्म अमबा-अनत है और आकाश की ब्राह्म सर्व पदार्थ व्यापी है।

परन्तु जैनधर्म के इस महत् सत्व के यथाय रहस्य को समझने के लिय बहुत ही थोड मनुष्यो ने प्रयत्न किया है। जैन की इस अहिंसा के बार में लोगों में बड़ी अज्ञानता और बलमही फली हुई है। कोई इसे अव्यवहार्य बतलाता है तो कोई इसे अनावर्ण्य बतलाता है। कोई इस आत्मघातिनी कहता है और कोई राणूनाशिनी। कोई कहता है जैनधर्म की अहिंसा न देश को पराधीन बना लिया है और कोई कहता है, इसने प्रजा का निर्वीय बना लिया है। इस प्रकार जैनी अहिंसा के बार में अनेक मनुष्यो के अनेक कुबेचार गुनाई दत हैं। कुछ बष पहल देसमक पमादकशरी लालाजा तक न भी एक पसा ही समात्मक विचार प्रकाशित कराया था, जिममे महात्मा गांधीजा द्वारा प्रचारित अहिंसा के सत्व का विराध किया गया था, और फिर जिसका समाधायक उत्तर स्वर् महात्माजी न दिया था। लाजाजी जैसे महत् विद्वान् और प्रसिद्ध दशनायक हो का तथा जैन साधुओं का पूरा परि श्वय रसकर भी जब इस अहिंसा के विषय में जैसे आतविचार रह

सकते हैं जो फिर अन्य साधारण मनुष्यों की-तो बत ही बत की जाय । दाल ही में—कुछ दिन पहले—जी क नरीमान नामक एक पारसी विद्वान् ने महात्मा गांधीजी का सम्बोधन कर एक लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने जैनों की अहिंसा के विषय में ऐसे ही अमपूर्ण उद्गार प्रकट किये हैं । मि नरीमान एक अच्छे मोरिहण्टल स्कॉलर है, और उनको जैन साहित्य तथा जैन विद्वानों का कुछ परिचय भी साक्षात् होता है । जैनधर्म से परिचित और पुरातन इतिहास से अभिज्ञ विद्वानों के मुह से जब ऐसे अविचारित उद्गार सुनाई देते हैं, तब साधारण मनुष्यों के मन में उक्त प्रकार की भांति का ठस जाना साहजिक है । इसलिये हम यहां पर सतप में आज जैनधर्म की अहिंसा के बारे में जो उक्त प्रकार की भांतियां जनसमाज में फैली हुई हैं, उनका मिथ्यापन दिखाते हैं ।

जैनी अहिंसा के विषय में पहला आक्षेप यह किया जाता है कि—जैनधर्म के प्रवर्तकों ने अहिंसा कि मर्यादा को इतनी लम्बी और इतनी विस्तृत बना दी है कि, जिससे लगभग वह अव्यवहार्य की कोटि में जा पहुँची है । जो कोश इस अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करना चाहे तो उसे अपनी समग्र जीवनकियायें बंध करनी होंगी और निश्चेष्ट हो कर देहत्याग करना होगा । जीवनव्यवहार को चाख रखना और इस अहिंसा का पालन भी करना, ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं । अतः इस अहिंसा के पालन का मतलब आत्मघात करना है; इत्यादि ।

यद्यपि इसमें काह शक नहीं है कि—जैन अहिंसा की मर्यादा बहुत ही विस्तृत है और इस लिये उसका पालन करना संभव ठिये बहुत ही कठिन है । तथापि यह सर्वथा अव्यवहार्य वा आत्मघातक-

है, इस कथन में बिचिन् भी तथ्य नहीं है । न यह अज्यवहाय ही है और न आत्मघातक ही । यह बात तो सब काइ रसीकारने और मानने है कि, इस अहिंसा तत्व के प्रवचकों ने इसका आचरण अपने जीवन में पूर्ण रूप से किया था । वे इसका पूणतया चालन करते हुए भी वर्षों तक जावित रह और जगत् को अपना परम तत्त्व समझाने रहे । उनका उद्देशानुसार अन्य अमान्य मनुष्यों ने आज तक इस तत्त्वका यथाथ पालन किया है परन्तु किसीको आत्मघात करनेका काम नहीं पडा । इस लिये यह बात तो सवानुभवसिद्ध जैसी है कि जैन अहिंसा अज्यवहाय भी नहीं है और इसका चालन करने के लिये आत्मघात की भी आवश्यकता नहीं है । यह विचार तो वैसा ही है जसा कि महात्मा गांधी जीने देशक उद्धार निमित्त जब असहयोग की योजना उद्बोधित की तब अनेक विद्वान और नेता कहल न वाले मनुष्याने उनकी इस योजनाको अज्यवहाय और राष्ट्रनाशक बनानेकी कमी लकी लकी बातें की थीं और जनताको उसे सावधान रहने की विनयन दी थी । परन्तु अनुभव और आचरण से यह अब निरसदह सिद्ध हो गया कि न असहयोग की योजना अज्यवहाय ही है और न राष्ट्रनाशक है । हा जो अपन स्वाधका भोग देनेके लिये तैयार नहीं और अपन सुखोंका त्याग करने से तस्पर नहीं उनका लिये ये दोनों बातें अवश्य अज्यवहार्य हैं। इसमें काइ संदेह नहीं है । आत्मा या राष्ट्रका उद्धार बिना स्वाधयाग और सुख परिहार के कभा नहीं होता । राष्ट्र का स्वतंत्र और सुखी बनानेके लिये जैसे स्वतंत्र अपण की आवश्यकता है वैसा ही आत्मा को आधि-याधि उपाधिसे स्वतंत्र और सुखी बनानेके लिये भी सर्व मायिक सुखों के बलिदान करनेकी आवश्यकता है । इस लिये जो " मुमुक्षु " ( बधनोसे मुक्त होनेका इच्छा रखनेवाला ) है—राष्ट्र और आत्माके उद्धारका इच्छुक है उसको यह जैन अहिंसा कभी भी अज्यवहार्य न

आत्मनाशक नहीं मादम देगी परन्तु स्वाथलोलुप और सुर्थिया जीवोकी बात अलग है ।

जैन धर्मकी अहिंसा पर दूसरा परतु बडा आदाप यह किया जाता है कि—इस अहिंसा क प्रचारन भारत को पराधीन आर प्रजाका निधीय बना दिया है । इस आशेपके करने वाला का मत है कि अहिंसा क प्रचारसे लोकोमें शौर्य नहीं रहा । क्योंकि अहिंसाजय मापसे डर कर लोकोने मास भक्षण छोड दिया, और बिना मास भक्षणके शरीरमें बल और मनमें शौर्य नहीं पैदा होता । इस लिय प्रजाके दिलमेंसे युद्धकी मानना नष्ट हो गइ और उसक कारण पिदेशी और विधर्मी लोकोने भारत पर आक्रमण कर उसे अपन अधीन बना लिया । इस प्रकार अहिंसाके प्रचारसे देश पराधीन और प्रजा पराक्रमशून्य हा गई ।

अहिंसा के बारे में की गई यह कल्पना नितान्त युक्तिशून्य और सत्यसे परामुख है । इस कल्पनाक मूलमें बनी भारी अज्ञानता और अनुभवशून्यता रही हुई है । जा यह विचार प्रदर्शित करते हैं उनको न तो भारतमें प्राचीन इतिहासका पता होना चाहिए और न जगत के मानव समाजकी परिस्थितिका ज्ञान होना चाहिए । भारतकी पराधीनताका कारण अहिंसा नहीं है परतु भारतकी अकर्मण्यता अज्ञानता और असहिष्णुता है और इन सबका मूल हिंसा है । भारतका पुनर्जन इतिहास प्रकट रूपसे बजला रहा है कि जब तक भारतमें अहिंसाप्रश्न धर्मिक अभ्युदय रहा तब तक प्रजामें शांति, शौर्य, सुख और सत्ताप यथेष्ट था । अहिंसा धर्मके महान उपासक और प्रचारक तृपति मौर्य सम्राट चंद्रशुत और अज्ञान थे; क्या इनके समयमें भारत पराधीन हुआ था ? अहिंसा धर्मके कट्टर अनुयायी दक्षिणके बद्ध, पञ्चन और चौ छन्य वंशके प्रसिद्ध प्रसिद्ध महाराजा थे; क्या उनक राजत्वकालमें किसी पराक्रमने अन्तर भारतको जताया था ? अहिंसा सत्यका अनुयायी स्वक

वर्ती सम्राट् आहूष था, क्या उसका समयमें भारतका किसीने पद दक्षिण किया था ? अहिंसा मतका पालन करने वाला दक्षिणका राजपूत वशीव नृपति अमोघवप और गुजरातका चाणक्य वशीपि प्रजापाल कुभारपाल था, क्या इनका अहिंसापासनास दशकी स्वतंत्रता नष्ट हुई थी ? इतिहास ता साक्षी द रहा है कि भारत इन राजाओंके राजत्व कालमें अशुभ दयके क्षिप्र पर पहचा था । जब तक भारतमें वैद्व और जैन धर्मका जोर था और जब तक य धम राष्ट्रीय धम कहलात थे तब तक भारतमें स्वतंत्रता, शांति, संपत्ति इत्यादि पूर्ण रूपस विराजित था । अहिंसाके इन परम उपासक नृपतियोने अहिंसा धमका पालन करत हुए भी अनेक युद्ध किये अनेक शत्रुओंका पराजित किय और अनेक दुष्टजनोंको दण्डित किये । इनकी अहिंसापासनाने न दश को पराधीन बनाया और न प्रजाको निर्वाय बनाया । जिनको गुजरात और राजपूतानके इतिहासका थोडा बहुत मी वास्तविक ज्ञान है वे जान सकत हैं कि इन देशों को स्वतंत्र, संपन्न और सुरक्षित रखनके लिये जैनोंने कैसे कैसे पराक्रम किये थे । जिस समय गुजरातका राज्यकायभार जैनाके अगान था—महामात्य, मंत्री, सनापति, कोषाध्यक्ष आदि बड बड अधिकारपद जैनोंके अधीन थे—उस समय गुजरातका ऐश्वर्य उन्नतिकी चरम सामा पर धडा हुआ था । गुजरातके सिंहासनका तेज दिग्दिगल व्यापी था । गुजरातके इतिहासमें दंडनायक विमलशाहा, मंत्री मुजाल, मंत्री शालु, महामात्य उदयन और बाहड, वस्तुपाल और तेजपाल, जाम्बू और जगहू, इत्यादि जैन राजद्वारी पुरुषोंका जो स्थान है वह अरोंको नहीं है । केवल गुजरात ही न इतिहासमें नहीं परंतु समूह भग्न के इतिहासमें भी इन अहिंसाधम के परयोपासकों के पराक्रमके तुलना रखनवाले पुरुष बहुत कम मिलेगे । जिस धर्मके परम अनुयायी स्वयं एतस गुरवीर और पराक्रमवाली थे और जिन्होंने अनेक पुरुषाधिकृत देश और राज्यको रक्ष

समृद्ध और सरवशील बनाया था, उस धर्मके प्रचारसे देशकी या प्रजाकी अभोगति कैसे हो सकती है ? दशकी श्राधीनता या प्रजाकी निर्भीकतामें कारणगून 'अहिंसा' कभी नहीं हो सकती। जिन देशोंमें 'हिंसा' का खूब प्रचार है, जो अहिंसाका नाम तक नहीं जानने हैं, एक मास ही जिनका शास्त्रत भक्षण है और पशुसे भी जो अधिक-कूर होते हैं क्या वे सदैव स्वतंत्र बन रहते हैं ? रोमन साम्राज्य ने किस दिन अहिंसाका नाम सुना था ? और मास भक्षण छोड़ा था ? फिर क्यों उसका नाम सत्कारसे उठ गया ? तुर्क प्रजामेंसे कब हिंसा-भाव नष्ट हुआ और कूरताका लोप हुआ ? फिर क्यों उसके साम्राज्यकी आज यह दीन दशा हो रही है ? आयरलैण्डमें कब अहिंसाकी उद्घोषणा की गई थी ? फिर क्यों वह आज शताब्दि योस स्वाधीन होनेके लिये तड़फड़ा रहा है ? दूसरे देशोंकी बात जाने दीजिए—खुद भारत ही क उदाहरण लीजिए। मुगल साम्राज्यक चाल कौन कब अहिंसाकी उपासना की थी जिससे उनका प्रमुख नामशेष हो गया और उसके विरुद्ध पेशवाओंने कब मास भक्षण किया था जिससे उनमें एकदम धीरत्वका योग उमड़ आया। इससे स्पष्ट है कि देशकी राजनैतिक उन्नति—अवनतिमें हिंसा—अहिंसा कोई कारण नहीं है। इसमें तो कारण केवल राजकर्ताओंकी कार्यदक्षता और कार्यपरायणता ही मुख्य है।

हां, प्रजाकी नैतिक उन्नति—अवनतिमें सत्त्व अहिंसा—हिंसा अवश्य कारणभूत होती है। अहिंसाकी भावनासे प्रजामें सान्निध्य वृत्ति खिलती है और जहां सान्निध्य वृत्तिक विकास है वहां सत्त्वका निवास है। सत्त्व शाली प्रजा ही का जीवन श्रेष्ठ और उच्च समझा जाता है इससे विपरीत श्राधीन जीवन फनिष्ट और नीच गिना जाता है। जिस प्रजामें सत्त्व नहीं वहां, संपत्ति, सत्प्रता आदि कुछ नहीं। इस लिये प्रजाकी नैतिक

उन्नतिमें अहिंसा एक प्रधान कारण है। नैतिक उन्नतिके मुकाबले में भौतिक प्रगतिका कोई स्थान नहीं है और इस विचारमें भारत वर्षके पुराण ऋषि—मुनियोने अपनी प्रजाका शुद्ध नीतिमान बनने ही का सवाधिक सद्बुद्धि दिया है। युगपरी प्रज्ञान नैतिक उन्नतिको गौणकर भौतिक प्रगतिकी ओर जो आंखमीच कर दीजना शुरू किया था उसका बद्ध परिणाम आज सारा समार भोग रहा है। समारमें यदि सच्चा शान्ति और वास्तविक स्वतंत्रताके स्थापित होनकी आवश्यकता है तो मनुष्योंको शुद्ध नीतिमान बनना चाहिए।

शुद्ध नीतिमान यही बन सन्ता है ना अहिंसाक तरकी ठीक ठीक समझ कर उसका पाठन करता है। अहिंसा, शान्ति, शक्ति, शुचिता, दया, प्रेम, गमा, सहिष्णुता, निलम्बना इत्यादि सर्व प्रकारके सद्गुणों की जननी है। अहिंसाक आवरणम मनुष्यके दृश्यमें पवित्र मात्रोका संचार होता है, वैर विरोधकी भावना नष्ट हानी है और सबके साथ बहुत बका नाता जुड़ता है। जिस प्रकारमें ये मात्र सिद्ध है वही एक्य का साम्राज्य होगा है और एकता ही आज हमारे दशक अभ्युत्थन और स्वातंत्र्यका मूलबीज है। इस वि जितना यह दशक अनैतिक कारण नहीं है परन्तु उन्नतिका एकमात्र तर अमेव साधन है।

‘हिंसा’ शब्द हननाईक ‘हिंसि’ धातु पर से बना है इस लिए ‘हिंसा’ का अर्थ होता है, किसी प्राणी का हनना या मारना। भारतीय ऋषि मुनियों ने हिंसा का स्पष्ट अर्थ इस प्रकार की है—‘प्राण विक्रम प्रयोजन व्यपार’ अर्थात् ‘प्राणि दुःख साधन व्यापारो हिंसा अर्थात् प्राणी के प्राण का वियोग करने क क्रिय अथवा प्राणी को दुःख देने के लिए जा प्रयत्न किया उसका नाम हिंसा है। इसके विपरीत— किसी भी जीव क दुःख या कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। ‘पातञ्जल’ योगसूत्र क मध्यमर मर्दि व्यासने ‘अहिंसा का लक्षण यह किण

है—‘सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनाभिद्रोह—अहिंसा’ अर्थात् सब तरह से, सब समय में, सभी प्राणियों के साथ अद्रोह भाव से बनना—प्रेम-भाव रखना उसका नाम अहिंसा है। इसी अर्थ को विशेष स्पष्ट करने के लिये ईश्वरगीता में लिखा है कि—

कमणा मनसा वाचा समभूतेषु सर्वदा

अकृशजनेन मोक्षा अहिंसा परमर्षिभिः ।

अर्थात्—मन, वचन और कर्म से सर्वदा किसी भी प्राणी को क्रोध नहीं पहुँचाने का नाम महर्षियों ने ‘अहिंसा’ कहा है। इस प्रकार की अहिंसा के पालन की क्या आवश्यकता है इसका लिये आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है कि—

आत्मन् सर्वभूतेषु सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।

चिन्तयन्नात्मनाऽनिष्टां हिंसामयस्य नाचरेत् ॥

अर्थात्—जैसे अपनी आत्मा को सुख प्रिय लगता है और दुःख अप्रिय लगता है, वैसे ही सब प्राणियों से लगता है। इस लिये अपनी आत्मा के समान अन्य आत्माओं के प्रति भी अनिष्ट ऐसी हिंसा का आचरण कभी नहीं करना चाहिये। यही बात स्वयं श्रमणमगवान् श्री महावीर ने भी इस प्रकार कहा है—

“सर्वे याणां प्रिया, सुदसाया, दुःखप्रिकूटा, अप्रिय वहा, वि-  
जीविणो, जीविउकामा । (तम्हा) णातिवाणञ्ज विवण ।”

अर्थात्—सर्व प्राणियों को आयुष्य प्रिय है, सब सुख के अभिष्टानी हैं, दुःख सबको प्रतिकूल है, वध सबको अप्रिय है, जीवित सभी को प्रिय लगता है—सभी जीवनों की दृष्टा रखते हैं। इसलिये किसीको मारना या कष्ट न देना चाहिए। अहिंसा के आचरण की आवश्यकता के लिये इसका बहुरूप और कोई दलील नहीं है—अगर कोई दलील हो ही नहीं सकती।



परन्तु यहाँ पर एक मंत्र यह उपरिष्ठ होगा है कि, इस प्रकार की अहिंसा का पालन सभी मनुष्य किस तरह कर सकें हैं। क्योंकि जैसा कि गांधी ने कहा है—

जन्मे जीवा इत्यत्र जाया जीवा पवनमन्त्रके ।

शान्तमालाकुल जीवा सर्वे जन्मय जगत् ॥

अर्थात् जल में, स्थल में, पर्वत में, अग्नि में इत्यादि सब जगह जाइ मर हुए हैं—सारा जगत जाइमय है। इसलिये मनुष्य के मनुष्यक व्यवहारमें—खान में, पान में, चलन में, बैठन में, व्यापार में, विहार में इत्यादि सब प्रकार के व्यवहार में—अहिंसा होनी है। बिना हिंसा के कोई भी प्रवृत्ति नहीं का जासकती। अतः इस प्रकार की सख्त अहिंसा के पालन करने का अर्थ तो यह हो सकता है, मनुष्य अपनी सभी जीवन श्रियाओं को बच कर, योगी के समान सन्तोस्य हा इस तरह देह या बलात् नाश करे। एसा करने के शिष्य,—अहिंसा का भी पालन करना और जीवन को भी बचाय रखना, यह तो आकाश—पृथुम की गंध का अभिप्राय के समान ही निरर्थक आर निर्विचार है। अतः पूरा अहिंसा यह कबल विचार का ही विषय हो सकता है आचार का नहीं।

यह मंत्र यथाथ है। इस मंत्र का समाधान अहिंसा के अर्थ और अधिकारी का निरूपण करने से होगा। इसलिये प्रथम अहिंसा के अर्थ बतलाये जाने ह। जैनशास्त्रकारों ने अहिंसा के अनेक प्रकार बतलाये हैं। जैसे स्यूत अहिंसा, और सूक्ष्म अहिंसा, द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा, स्वहृत् अहिंसा और परमाथ अहिंसा, शश अहिंसा आर सर्व अहिंसा, इत्यादि। किसी भी चरन किरण प्रणा या जीव का जीमान से न मारने की प्रवृत्ति का नाम स्यूत अहिंसा है, और सर्व प्रकार के प्राणियों को सब तरह से कुशल न पहुचने की आवरण का नाम

सूक्ष्म अहिंसा है। किसी भी जीव को अपने शरीर से दुःख न देने का नाम द्रव्य अहिंसा है और सब आमाओं व कल्याण की कामना का नाम भाव अहिंसा है। यही बात स्वरूप और परमार्थ अहिंसा के बार में भी कही जासकता है। किसी अन्न में अहिंसा का पालन करना देश अहिंसा कहलाती है और सब प्रकार—सपूणतया अहिंसा का पालन करना सब अहिंसा कहलाती है।

यद्यपि आत्मा को अमरत्व की प्राप्ति के लिये और सत्कार क सब धर्मों से मुक्त होने के लिये अहिंसा का सपूणरूप से आचरण करना परमावश्यक है। बिना वैसा किये मुक्ति कदापि नहीं मिल सकती। तथापि सत्कार निवासी सभी मनुष्यों में एकदम ऐसी पूर्ण अहिंसा के पालन करने की शक्ति और योग्यता नहीं आसकती, इसलिये न्यूनाधिक शक्ति और योग्यता वाले मनुष्यों के लिये उपर्युक्त रीति में तत्त्वज्ञों ने अहिंसा के भेद कर क्रमशः इस विषय में मनुष्य को उन्नत होने की सुविधा बतला दी है। अहिंसा के इन भेदों के कारण उसके अधिकारियों में भेद कर दिया, गया है। जो मनुष्य अहिंसा का सपूणतया पालन नहीं कर सकत, वे गृहस्थ—श्रावक—उपासक—अणुधनी दशव्रती इत्यादि कहलाते हैं। जब तक जिस मनुष्य में सत्कार क सब प्रकार के माह और प्रलोभन का सर्वथा छोड़ देने की जितनी आभिशक्ति प्रकृत नहीं होती तब तक वह सत्कार में रहा हुआ और अपना गृहस्थव्यवहार चलाता हुआ धीरे धीरे अहिंसात्मक पालन में उन्नति करता चला जाय। जहाँ तक हो सके वह अपने स्वार्थों को कम करना जाय और निजी स्वार्थ के लिये प्राणियों के प्रातिमान-ताडन—उद्वेग—आक्रोश आदि क्लेशजनक व्यवहारों का परिहार करता जाय। इस गृहस्थ के लिये कुटुंब देश या धर्म के रक्षण, क निमित्त यदि स्थूल हिंसा करनी पड़े तो उसे अपने वत में कोई हानि नहीं पठ-

वती । क्योंकि जब तक वह गृहस्थी लेकर बैठा है तब तक समाज, देश और धर्म का यथाशक्ति रक्षण करना यह उसका परम कर्तव्य है । यदि किसी अनिर्वश यह अपने कर्तव्य से भ्रष्ट होना है तो उसका नैतिक अब पात होना है, और नैतिक अब पात यह एक सुदम हिंसा है । क्योंकि इससे आत्मा की उच्चवृत्ति का हनन होता है । अहिंसा धर्म क उपासक के लिये निजी स्वार्थ—निजी लोभ के निमित्त स्थूल हिंसा का त्याग पूर्ण आवश्यक है । जो मनुष्य अपनी विषय तृष्णा की पूर्ति के लिये स्थूल प्राणियों को कुश पट्टाता है, वह कभी किसी प्रकार अहिंसाधर्मी नहीं कहलाता । अहिंसक गृहस्थ के लिये यदि हिंसा कर्तव्य है तो वह कवल परार्थक है । इस सिद्धान्त से विचारक समझ सकते हैं कि, अहिंसाधर्म का पालन करता हुआ, भी गृहस्थ अपने समाज और देश का रक्षण करने के लिय युद्ध कर सकता है— लड़ाई लड़ सकता है । इस विषय की सत्यता के लिय हम यहां पर ऐतिहासिक प्रमाण भी द देते हैं—

गुजरात के अन्तिम चौखण्ड नृपति दूसरे भीम ( जिसको भोलो भीम भी कहते हैं ) के समय में, एक दफह उसकी राजधानी अणहिल्लपुर पर मुसलमानों का हमला हुआ । राजा उस समय राजधानी में ही था—कवल राणी मौजूद थी । मुसलमानों के हमले से शहर का संरक्षण कैसे करना इसका सब अधिकारियों को बड़ी चिन्ता हुई । इन्द्रनाथक ( सेनाधिपति ) के पक्ष पर उस समय एक आमु नामक श्रीमालिक वज्रिक श्रावक था । वह अपने अधिकार पर नया ही आय हुआ था, और साथ में वह बड़ा धर्माचरणी पुरुष था । इसलिये उसने युद्धविषयक सामर्थ्य के बारे में किसीको निश्चिन्त विश्वास नहीं था । इधर एक तो राजा स्वयं अनुपस्थित था, दूसरा राज्यमें कोई वैसा अर्थ पराधीन पुरुष न था, और तीसरा, न राज्यमें यथेष्ट सैन्य ही था । इस

लिये राणी का बड़ी चिन्ता हुई। उसने किता विधवा और याग्य मन्त्र-  
 प्य के पाससे दबनायक आमु की क्षमता का कुछ हाल जान कर स्वर्ष  
 उसे अपने पास बुलाया और नगर पर आई हुई, आपसि के सम्बन्ध में  
 क्या उपाय किया इसकी सलाह पूछी। तब दबनायकने कहा कि यदि  
 महाराणी का मुझ पर विश्वास हो और युद्ध सबधी पूरी सत्ता मुझे सौंप  
 दी जाय तो मुझे श्रद्धा है कि मैं अपने देश को शत्रु के हाथ से बाल  
 बाल बचा लूंगा। आमु के इस उत्साहजनक वचन को सुनकर राणी  
 खुश हुई और युद्ध सबधी संपूर्ण सत्ता उसको देकर युद्धकी घोषणा कर  
 दी। दबनायक आमु ने उसी क्षण सैनिक सवटन कर लडाई के मैदान  
 में डेरा किया। दूसरे दिन प्रातः काल से युद्ध शुरू होने वाला था। पह  
 ले दिन अपनी सना का जमाव करने करते उस सध्या हो गई। यह  
 व्रतधारी श्रावक था इसलिये प्रतिदिन उमय काल प्रतिक्रमण करने का  
 उसको नियम था। सध्या व पढने पर प्रतिक्रमण का समय हुआ देख  
 उसने कहीं एकांत में जाकर बैसा करनेका विचार किया। परंतु उसी  
 क्षण मलूम हुआ कि उस समय उसका बहस अत्यंत जाना इच्छिष्ठ  
 कार्य में विघ्नकर था, इसलिये उसने वहीं हाथी के होदे पर बैठे ही बैठे  
 एकाग्रता पूर्वक प्रतिक्रमण करना शुरू कर दिया। जब वह प्रतिक्रमण में  
 आन वाले—“जेमे जीना विराहिया—एगिंदिया—बहादिया” इत्यादि  
 पाठ का उच्चारण कर रहा था तब किता सैनिक ने उसे सुन कर किधी  
 अन्य अक्षर से कहा कि—दे खिर जाव हमरे से। पिगि उदर तो,  
 इस लडाई के मैदान में भी—जहाँ पर सख्त्र की क्षमादान हो रही  
 है मारो मारो की पुकारें बुलाइ जा रही हैं वहाँ—एगिंदिया बहादिया  
 कर रहे हैं। नरम नरम सीरा खाने वाले ये श्रावक साहब क्या बहा-  
 डी बतथेगे। धीरे धीरे यह बात ठेठ राणी के कान तक पहुंची।  
 यह सुनकर बहुत सद्विग्व हुई परंतु उस समय अथ कोई विचार करने

हिंसा जन्म पाप का स्वप्न विलम्ब नहीं होता और इस लिये उन का आत्मा इस पाप बंधनसे मुक्त ही रहता है। जब तक मनुष्य का आत्मा इस स्थूल शरीर में अभिष्टाना हाकर वास करता रहता है तब तक इस शरीर से वैसी गूदम हिंसा का हाना अनिश्चय है। परन्तु उस हिंसा में आत्मा का किसी प्रकार का संकल्प विकल्प न होने से वह उत्तम अग्नि ही रहता है। महावतियों के शरीर से हान वाली यह हिंसा द्रव्य हिंसा या स्वरूप हिंसा कहलाती है। भाव हिंसा या परमार्थ हिंसा नहीं। क्योंकि इस हिंसा में आत्मा का कोई हिंसक भाव नहीं है। हिंसा जन्म पाप से वही आत्मा बद्ध होता है जो हिंसक भाव से हिंसा करता है। जैनो के तत्त्वाथ सूत्र में हिंसा का उल्लेख बगाने हुए यह लिखा है कि—

‘ प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपण हिंसा । ’

अर्थात्—प्रमत्त भाव से जो प्राणियों के प्राण का नाश किया जाता है वह हिंसा है। प्रमत्तभाव का तात्पर्य है विषय-कषाय युक्त होकर, जो जीव विषय कराय के वश होकर किसी भी प्राणी का दुःख या कष्ट पहुँचाता है वह हिंसा के पाप का बन्धन करता है। इस हिंसा की व्याप्ति कबल शरीर से कष्ट पहुँचाने तक ही नहीं है परन्तु बन्धन में वैसा उच्चारण और मन से वैसा चिन्तन करने तक है। जो विषय-कषाय के वश हो कर दूसरों के लिये अनाष्ट मायन या अनौष्ट चिन्तन करता है वह भी भाव-हिंसा या परमार्थ-हिंसा करता है। और इसके विरतीत, आ विषय-कषाय से निवृत्त रह, उत्तम हिंसक भाव न होना प्रत्यापनी हो भी गई ता उनका यह हिंसक परमार्थ हिंसा नहीं है। एक व्यावहारिक उदाहरण से इसका स्वरूप स्पष्ट समझ में आ जायगा।

एक पिता अपने पुत्र का या गुरु अपने शिष्य की हिंसा बुरी प्रवृत्ति से छुट हो कर उनका कल्याण के लिये कठोर बचन से या शरीर से उच्छका छानना करता है, तो वह पिता या गुरु लोकश्रेष्ठ में काह निन्दनीय

या दण्डनीय नहीं समझा जाता। क्योंकि पिता या गुरु का यह व्यवहार द्वेष-जन्य नहीं है। उस व्यवहार में सद्बुद्धि रही हुई है। इस प्रकार पिता और माता को दण्ड मनुष्य द्वारा वश हो कर किसी मनुष्य को गाली गत्राच या मारपीट करता है, तो वह राज्य या समाज की दृष्टि में दण्डनीय और निन्दनीय समझा जाता है। क्योंकि ऐसा व्यवहार करने में अपना आशय दुष्ट है। यद्यपि इन दोनों प्रकार के व्यवहारों का वास्तविक स्वरूप समान ही है तथापि आशय भेद से उनमें भिन्नता ही है। इसी प्रकार का भेद द्रव्य और भाव हिंसादि के स्वरूप में समझना चाहिए।

वास्तव में हिंसा और अहिंसा का स्वभाव मनुष्य की मानसिकता पर अवलम्बित है। किसी भी कर्म या काय के शुभाशुभ फल का आवाकता के मनोभाव ऊपर है। मनुष्य जिस भाव से जो कर्म करता है, उसी अनुसार उसे फल मिलता है। कर्म का शुभाशुभफल उसके स्वरूप में नहीं रहा हुआ है, किन्तु कर्म के विचार में रहा हुआ है। जिस कर्म को करने में कर्ता का विचार शुभ है वह शुभ कर्म कहलाता है और जिस कर्म को करने में कर्ता का विचार अशुभ है वह अशुभ कर्म कहलाता है। एक डॉक्टर किसी मनुष्य को शस्त्रक्रिया करने के लिये जा क्लोरोफॉर्म सुवा कर बहोश बनाता है उसमें और एक चोर या खूनो किसी मनुष्य को धन या जीवित हनन करने के लिये जा क्लोरोफॉर्म सुवा कर, बहोश करता है उसमें एक ही-प्रकार की, ये सब क्रियाएँ भी फरक नहीं है। परन्तु फल की दृष्टि से जब देखा जाता है, तब डॉक्टर को तो बड़ा सम्मान मिलता है और चोर या खूनो का मयकर शिक्षा दी जाती है। यह उदाहरण 'जगत् की दृष्टि से हुआ। अब एक दूसरा उदाहरण लीजिये, जो स्वयं मनुष्य की अन्तरात्मा की दृष्टि में अनुभूत होता है। एक पुत्र

प्रकार अपनी स्त्री से आलिंगन करता है, उसी प्रकार वह अपनी माता बहिन या पुत्री से आलिंगन करता है। आलिंगन के बाह्य प्रकार में कुछ भेद न होने पर भी आलिंगन कता के आंतरिक भावों में बड़ा भारी भेद अनुभूत होता है। पत्नी से आलिंगन करते हुए पुत्र के मन और शरीर जब मलिन विकारभाव से भरता होता है, तब माता आदि के साथ आलिंगन करने में मनुष्य का मन निर्मल और शुद्ध सात्त्विक-वत्सल-भाव से भरता होता है। कर्म के स्वरूप में किंचित् फरक न होने पर भी फल के स्वरूप में इतना विपर्यय क्यों है, इसका जब विचार किया जाता है, तो स्पष्ट ही मालूम होता है कि, कर्म करने वाले के भाव में विपर्यय होने से फल के स्वरूप में विपर्यय है। इसी फल के परिणाम ऊपर से कर्ता के मनोभाव का अशुभ या बुरापन निर्मित किया जाता है, उसी मनोभाव के अनुसार कर्म का शुभाशुभ पना माना जाता है। अतः इससे यह सिद्ध होगया कि धर्म अधर्म—पुण्य—पाप—सुकृत-दुकृत का मूलमूल केवल मन ही है। भागवतधर्म के नारद पंचरात्र नामक ग्रंथ में एक अग्रह कहा गया है कि—

मानस प्राणिनामव सर्वकर्मैककारणम् ।

मनाऽरूप वाच्य च वाक्येन प्रस्फुट मन ॥

अर्थात् प्राणियों के सर्व कर्मों का मूल एक मात्र मन ही है। मन के अनुरूप ही मनुष्य की वचन (आदि) प्रवृत्ति होती है और उच्च प्रवृत्ति से उसका मन प्रकट होता है।

१० इस प्रकार सब कर्मों में मन ही की प्रधानता है। इस लिये आत्मिक विकास में सबसे प्रथम मन को शुद्ध और सयत् बनाने की आवश्यकता

११ जिसका मन इस प्रकार शुद्ध और सयत् होता है वह फिर किसी के कर्मों से लित नहीं होता। यद्यपि जब तक आत्मा देह के

धारण किये हुए है, तब तक उससे कर्म का सर्वथा त्याग किया जाना असमभव है । क्योंकि गीता का कथन है कि—

‘ नहि दहमृता शक्य त्यक्तु कमण्यशेषत । ’

तथापि—

योगयुक्तो विदुदात्मा विजितात्मा जितेन्द्रिय ।

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

इस गीतोक्त कथनानुसार—जो योगयुक्त, विदुदात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रिय और सर्व भूतों में आत्मबुद्धि रखनेवाला पुरुष है, वह कर्म करके भी उससे अलिप्त रहता है ।

ऊपर के इस सिद्धांत से पाठकों की समझ में अब यह जगड़ी तरह आजायगा कि, जो सर्ववनी-पूर्णत्यागी मनुष्य है उनसे जो कुछ सूक्ष्म कायिक हिंसा होती है उसका फल उनको क्यों नहीं मिलता । इसी लिये कि, उनसे होने वाली हिंसा में उनका भाव हिंसक नहीं है । और बिना हिंसक-भाव से हुई हिंसा, नहीं कही जाती । इसलिये आवश्यक महाभाष्य नामक आत जैन ग्रंथ में कहा है कि—

अशुभपरिणामहेऊ जीवावाहो त्ति तो मय हिंसा ।

जस्त उ न सो निमित्त सतो विन तस्स सा हिंसा ॥

अर्थात् किसी जीव को कष्ट पहुंचाने में जो अशुभ परिणाम निमित्त भूत है तो वह हिंसा है, और ऊपर से हिंसा मालूम देने पर भी जिस में वह अशुभ परिणाम निमित्त नहीं है, वह हिंसा नहीं कहलाती । यही बात एक और ग्रंथ में इस प्रकार कही हुई है —

ज न हु मणिओ बवो जीवरस वहेवि समिद्दगुत्ताण ।

भावो तत्थ पमाण न पमाण कायवाधारो ॥

( धर्मरत्न मञ्जूषा, पृ ८३९ )

अर्थात् समिति—गुणियुक्त महावतियों से किसी जीव का बंध हो जाने



पर भी उसका उनको बच नहीं होगा क्योंकि बच में मानसिक भाव ही कारणमूल है—कायिक व्यापार नहीं। यही बात भगवद्गीता में भी कही हुई है। यथा —

यस्य नाहङ्गो मावा बुद्धियस्य न त्पिय ।

ह-नापि स इमाँल्लोकान् न हन्ति न निवर्त्यते ॥

अथ त्व जितके हृदय में भे 'अहमाव' नट हो गया है और जितकी बुद्धि अलित रहती है वह पुण्य कुरावित् लाकट्टि से लोगों का— प्राणियों को मारने वाशा दाखन पर भी न बर उनका मारता है, और न उस कर्म से बद्ध होता है।

इसके निपरीत जितका मन गुद और सयन नहीं है—जो विष और कषाय से लित है वह धाम्य स्वरूप स अहितक दीखने पर म तत्व से बद्ध हिंसक ही है। उसक जिय स्पष्ट कश गया है कि—

अहणो वि हिंसो दुद्धतणओ मजा अहिमरोज्ज ।

जितका मन दुष्ट—मानो से भग होता है वह किसीका नहीं मारक भी हिंसक ही है। इस प्रकार जैनधर्म की अहिंसा का सनि स्वरूप है। (महावारस उपृत)

## सानक्षेत्र

क्षत्रसु सतस्त्रपि पुण्यबृद्धये, वनेद्धन सम्पत्तिराजवद्धनी ।

५१५ कर्माशास्त्र १३० वृ, २११।० गड संकसत्र लाकट्ट ॥ १ ॥

अर्थ—धनपात्र मनुष्यको चाहिये, कि संपत्ति नरेश, का तरह पुण्यकी वृद्धिका इन्हासे अयात् धमकी पुष्टिक लिय सात क्षेत्रोंमें धन व्यय करे, इस पर यह तक हो सकती है कि खनी करने वाला (कृषक) क्या खानल ही बीजता है ?

नहीं नहीं सर्वही प्रकारके धान्योंको बीजता है। दृष्टान्तके सौर पर

किसी नगरमें कोई एक कोटिध्वज 'शाहुकार' रहता था, उसने अपने भव समयमें गाममें चार प्रतिष्ठित पुरुषोंको बुलाकर अपनी सखी साति दे, और कहा कि तुमको विश्वास प्राप्त समझ कर आपना पूजा देता हूँ। तन्पश्चात् मैं अपने अभीष्टको आप लोगोंके समक्ष प्रकाशित करता हूँ, कि मेरे सात पुत्र हैं। और उनके पालन पोषण के निमित्त उपयुक्त पत्नी हमारे अधिकारमें अर्पण की जाती है, तुमको सवथा उचित है कि मेरी सम्पत्तिका अनुचित रीतिसे दुरुपयोग न करे, केवल इस सवित्त पत्नी को मेरे नियमों के पालन पोषण में ही व्यय करके उनको पक्षके लिये ह्यात और आवाद रखे।

[उपनय घटना] सप्ताह यह एक तरहका नगर है, वीर परमात्मा शाहुकार है। उन्होंने अपने निर्वाण के समय अपनी ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य रूप अनन्त सम्पत्ति श्रीसखीको सुपुर्द करके कहा कि हमारे वतये हुए अर्पण हमारे स्थापन [कायम] किये हुये जिनविम्ब १ जिनवैद्य २ सम्यग् ज्ञान ३ साधु ४ सात्री ५ श्रावक ६ श्राविका ७ इन सात क्षेत्ररूप पुत्रोंका तुम सखा पाठन, पोषण, रक्षण और निरीक्षण करना, इन सात ही क्षेत्रोंका समान दृष्टिमें बचव करना। इन सात क्षेत्रोंको मेरे निज पुत्र समझ कर समान मात्रसे पाठना, और उपात, उपद्रवोंसे रक्षा करते रहना। गुणकारी, उरकारी, सहायक सामग्रीसे इहे उपबिन्द करना। आशय यह है कि इनमेंसे किसीको भी न्यूनधिक समझ कर विलङ्घन घटाना बढाना नहीं, किता पर भी भावकी न्यूनधिकता न रहत हुये, सबको मेरे ही शरणक अगम्य मानना। इससे हमारा यह आशय नहीं कि देव द्रव्य ज्ञान द्रव्य साधु सखी, या श्रावक श्राविका राजावे !! ऐसा होना तीर्थकर गणवर्तों की आशासे साक निरुद्ध है। हमारा आशय यह है कि हिन्दुस्थानमें आशुकर ३१ हजार जिनमदिर गिने जाते हैं। हरएक समझदार समझ सकना है कि—

जिनप्रतिमाकी पूजा में घूप-दीप-चन्दन-वराह-वात-याग-कुकी-  
 अगल्लरना-पचामल-कलस-पाल रकबी चामर चत्रना-मूठिया धौका-  
 पानी-पूजारी-आदि अनेक वस्तुये चाहिये, यह सत्कारमरक जैन आठ  
 हैं। आक और धनूसे जिनप्रतिमा कहीं नहीं पूजा जाती। ३६ हजार  
 मदिरो की पूजाके लिये कमतीमें कमती प्रति मदिर १००  
 रुपया सालाना भी गिना जाय तो भी हिसाब गिननेसे  
 ३६ लाख रुपया वार्षिक खर्च मदिरोका आता है यह कार्य  
 जैन समाजका भक्तिसे उनकी उत्कृष्ट मानना से सह्य हो रहा है, तथापि  
 प्रतिवर्ष नये मदिरोकी टिप्पणियों तद्वा मार उपराउररी आ रही है, इससे  
 अधिक लाम क्या सो हमारी समझमें नहीं आता। जहाँ १० घण्टीकी  
 जैनवस्ति है वहाँ ५००० हजारके खर्चसे मदिर बनवाया जाता है। उस  
 कार्यमें अनेक गामोंको दानिष्यनासे कहने कशानमें छात्रोंकी विफार  
 शोंके कारण शक्तिसे होने पर भापैसा दना पड़ता है। इसक वन्त जिन  
 गाममें एक जिनमदिर है वहाँ उसीकी संवामति नहीं हानी तो दूसरा  
 क्यों बनवाया जाता हागा? जो रुपया उस दूसरे मदिरमें खर्च करना है  
 यह उस पहले मदिरके निर्वाहके लिये जमा करके उसक व्याज वगैरहसे  
 मूलमदिरकी आशातना का परिहार क्यों न कराया जाय? हमने गतवर्ष  
 अनुभव करके देखा कि एक गाममें दो मदिर हैं वहाँ प्रतिदिन १०  
 आदमी भी पूजा नहीं करते होंग इतनेमें बड़ा दा पीन और बन रहे  
 हैं। सुना गया है कि उन मदिरोके तयार होना करीब २॥ लाख रुपया  
 खर्च होगा ऐसा हाजतमें इत्साफ की गटिस देखा जाय ता श्रावक श्राविका  
 रूप दोनों क्षेत्रोंकी कैसी हालत होरही है उधर क ई ख्याल देता है।  
 अगर श्रावक श्राविका ही नहीं रहेंगे तो उन दुन्दारे बनवाए मदिरोको  
 पूजेगा कौन?

दूसरे धर्मों तक गटिपात करते हैं तो साक तौर पर मान्य हाता है

कि जो लग आजस २० वर्ष पहले हजारोंकी सख्यामें थे वह आज लाखोंकी सख्यामें आगय और जैन भजा करोड़ोंकी सख्यामेंसे लाखोंमें आगय । अब यह भी सोचनका विषय है कि जिस धर्ममें विद्या नहीं, विद्वान् नहीं, जिसमें कोई नायक नहीं, जिसका आनेका मार्ग रुक हुआ है और जाना हमेशा जारी है उस धर्मको, उस समाज या—समाजकी बन्धी बढती कैसे हो सकती है ? बढती की तो बात ही दर कितनी रथो मूर्तिपूजाकी ही साति होरही है

सदर सूरतमें व्याख्यान दता हुए विदुषी एनीवेमेन्टने कहा था कि—  
 “यद्यपि जैनधर्म पवित्र और प्राचीन है तथापि आज करोड़ों उसकी उन्नतिभ्रष्ट दशाको देख कर बुद्धिबलसे मालूम दता है कि यह धर्म १०० वर्षोंमें ज्यादा दुनियामें नहीं टिकेगा ” आज हम उस बात का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं । इस वर्ष पहल जो मर्दूम शुमारि हुए थी उस वक्तमें और आज की सख्यामें १००००० आदमी की कमा हुए है । ४०००० मनुष्य सिर्फ मुंबई इलाकेमेंसे घटे हैं । इस अर्थमें तो सबम पहल श्रावक श्राविका रूप क्षत्रकी सार समाल करना चाहिये ।

## ॥ जिनविम्ब ॥

“विम्बम् महत्तनु च काशितमत्र विद्युमभ्यादिवत् परमवेऽपिशुभाय जैनम् ।  
 एषादुगुर्जुरपीप्सितदायिमत्रयत्तदौष्याभावि घनविघ्नाभेद न किं स्यात् ॥२॥

इस लाकमें छोटा या बडा एक भी जिन विम्ब कताया हाय, तो वह विद्युमाली देवतानो जैसे कल्याणका कारण हुआ वैसे सब मन्त्रारमाओं का हो सकता है । प्रासिद्ध बात है कि बडा इष्टफल देनेवाला मन्त्र ध्यान करनेवालेके दरिद्र का दूर नहीं करता अपूर्ण करता है ।

## ( विशय विवेचन )

सत्कारके प्रत्येक काम, नगर या अल्पदमें बलनसे

सकती

हे कि कोई किसी प्रकारसे और कोई किसी प्रकारसे परब्रह्म सत्ता की पन्दी पर मनुष्याभाव, संप्रदायभाव, मूर्तिपूजक, बुद्धपरहरण है। जो लोग बाहिरी तौरसे बुद्धपरस्ती का बुद्ध भी समझते हैं उनका परसे वे उनकी सामाजिक समस्याओं में उनके धार्मिकग्रन्थों पर, उनका पूज्यगुरुओंका मूर्तिर्या दक्षिण पक्षती है। दृष्टान्तके तौर पर समझिये, कि आर्यसमाज लोग मूर्तिपूजके कट्टर विरोधी हैं, परब्रह्म उनके विद्यालयोंमें, उपदेशमंत्रणोंमें "स्वामी दयानन्दजीके" फोटो भीतों पर लटकाए हुए मिलते हैं। वह लोग व्याख्यान देते समय बड़े आदर भावसे पूज्यशुद्धिदस हाथ लम्बा लम्बा करवताते हैं, कि यह "सत्यार्थके प्रचारक" यह भिष्म्याद्वयोंके निवारक यह "सत्तारके उद्धारक" स्वामी दयानन्दसरस्वती अपने बनाये हुए अमुक ग्रन्थके अमुक पृष्ठ पर यह बात लिखते हैं। "

अब समझना चाहिये कि जिस मूर्तिके सामने हाथ लम्बाया जाता है, जिसे स्वामीजीके इशारेसे बताया जाता है, वह क्या स्वामीजीकी देह है? क्या वह स्वामीजीका मूर्ति है? क्या उसमें स्वामीजीकी आत्मा विराजमान है? उससे किसी किसमकी स्वामीजीकी गरज सर सकती है? नहीं कि नी तरह भी नहीं इसी। प्रकार सत्तारके सम्पूर्ण मन्त्रणोंमें किसी न किसीरूप मूर्तियोंका मानना सिद्ध है। जैन, बौद्ध और वैष्णव स भी प्राचीन समयमें मूर्तियोंके पूजक हैं। उसमें विशय कर जैनधर्म में मूर्ति पूजा बड़े आदर सत्कारसे का जाती है। पर तु इतना तो अवश्य कहना पड़ेगा कि जैनसंप्रदाय मूर्तिको मूर्तिमान कर पत्थरके पुनले मानकर नहीं पूजा। कि तु वह जिस देव या गुरु का मूर्ति है उसकी अनुपस्थितिमें उसने उस मूर्तिके द्वारा स्मरण करके उसमूर्तिवालके गुणोंका पूजना है। न कि सामने दक्षिण इ देते उ उ बुद्धों। उस मूर्तिके द्वारा मूर्तिवाले महात्माकी जीवन चर्या को स्मरण करके उन अतीतकालकी घटनाओंको हृदयमें स्थान देकर



चाहिये उस माननांक सूचक दाहे प्रायः सर्वत्र जैन संप्रदायमें प्रचिद्ध हैं ।  
जैसे कि—

जलमयी सप्तपत्रमे, युगलिक नर पूज्य ।

श्रद्धम शरण अगूढभा, दायक मयत्रलगत ॥ १ ॥

जातुबले काठसग रद्या, निचया देणविन्हा ।

सद सदे करल लद्या, पूजा जातुनर । ॥ २ ॥

इत्यादि परसु बहुत लोग पूजाक समय इन ग्राहको बह ऊंचे आवा  
जसे गाते हैं, ऐसा हाना अत्रचिन है । पूजा मौनस ही होना चाहिये ।  
जैनदर्शनमें श्रद्धाबुद्धिसे जिनविश्व तयार कानशले क श्रिये प्रबल पुण्यका  
हाना माना गया है, जैसे कि—

“ अगुप्रमानमपि य प्रवरोति विन्दुम्, पीतायसानग्रयमाजिनिनेधराणां ।  
स्वयं प्रधानविपुर्द्विसुरानि भुक्त्वा पश्चात्तुलरगति समुपैति धीर ॥३॥”  
जो तमधीर मनुष्य श्रीनरभद्रवत् ० नर श्रमहासार स्वामीपर्यंत २४  
नारिकरदेशोमी अगुप्र जिनना मा प्रतिमा बनवाता है वह स्वयंमे अ  
सत्य सुखभोग कर पीउमे मानगुलरा भात हाता है ।

भरतचक्रवर्तीने दशमयी अपनी अगुनीमे हीरका प्रतिमा रल ह था ।  
गुजरातरु मल्ल्यात नरेश भीमसेवक प्रधानमंत्री विमलकुमार भी अपनी  
मुद्रिकामे जिनप्रतिमा रखकर राजद्वारमे जावा करत थ । मथुरा नगरी  
में जिस समय जैनधर्मका सपत्ता उ कथ था, उस समय वहां लोग अपन  
घराक दरवाजो पर भी जिनप्रतिमा का स्थापना किया करत थ । कहां तक  
कहा जाय ? दयता लोग जब देवममि ( स्वयं ) में पत्ता हात हैं पहिले ही  
जिनप्रतिमाकी व दना पूजना करत ह । सपतिन स जो कि चंद्रगुप्त राज वे  
वशन अशोकश्राक पौत्र थ, उहान सवा लक्ष जिनप्रतिमाये बनवाइ थीं ।  
जिनमे स आज भी कई एक उस समयकी प्रतिमाये मरलवय के अ-  
न्याय पाचीन स्थ नामे स निकलता नजर आती हैं । जैसे अस्थिया







अप्रियापे अन्तगत हगग प्रान्तके युदापल गहरम एक अप्रजके वर्गीचिम  
सोदते हुय निकली हुई महावीरकी प्रतिमा

रामे हगरीप्रोत्तरे " बुदापेस्त " शहरमें श्रीमन्महावीरस्वामीकी प्रतिमा  
 निकली हैं [ इसके विशेषवर्णनक लिये मेरा लिखा " गिरिनार न्यु"  
 और " समतिराजा " नामक पुस्तकोंका देखना जरूरी है ]

मूर्तिपूजकोंकी संख्या

मूर्तिनिषेधकोंका संख्या

बौद्ध ५८००००००००

याहुदा १२०००००००

कैथोलिक १००००००००

प्रोटेस्टेंट १७१६००००००

श्रीम १००००००००

पारसी १००००००

हिंदू २१६७००००००

मुसलमान २२१८००००००

जैन १०००००००

इस्लाम ३००००००

एनिमिष्ट ५०२००००००

ब्रह्मवाचनासमाज ५५००

मित्र लोग भी तुम्हें मूर्तियोंकी पूजा करत हैं ।

कुछ बर पहिले एक महाउभावने सरस्वतीमें " भारतकी मूर्ति प्राची-  
 ना " इस विषय पर लख लिखकर बडुामी नवीन जाननलायक बातों  
 का दिग्दर्शन कराया था । उनक कुछ सरल मरल और उपयोगी प-  
 ष्योंको सदा उद्धृत किया जाता ह । ' भारतवर्षकी प्राचीन शिल्पकलाका घ-  
 निष्ट सवष ' वम ' से सजदा रहा है । प्राचीन भारतक चित्रकार तथा  
 मूर्तिकार अपनी २ विद्या तथा कलाकी शिल्पका उपयोग ससारका साधा-  
 रण वस्तुओंक सवषमें न करत थ । भारतिय चित्रकार तथा मूर्तिकारोंका  
 उद्देश लक्ष्यताओंक चित्र तथा मूर्तिये था ग है । प्राचीन भारतवर्षका  
 गितनी मूर्तियां अभी तक मिली हैं, प्राय सबकी सब या ता किमी देखा  
 या महापुरुषकी हैं । या अध्ययनसजवी घटनाओंके आधार पर बनाई  
 गई हैं । भारतवर्षमें प्राचीन मूर्तिकारीक ' इतिहास ' का आरंभ अशोक  
 क समयसे हुआ हो, और अन्न मुसलमानाण समयसे हुआ हो, ऐसा  
 समझ सया सिद्ध है ।

अथात् ईसाकी तीसरी शताब्दीस गणकर ईसाक बाद बारहवीं



हुई हैं। ऐसा हा "राजपुर" के पास 'पथर' ग्रामम तक्ष  
 नाथ की मूर्ति है, जो आजसे असाध्य वर्ष पहिलकी हुई  
 बना है। श्रवणवल्लभके इतिहासोस पता लगता  
 कि वहाँना राय जैनधर्म की चिरकालसे उपासना करता था। जैन  
 उपदेशकोका परिचय न रहनस वहाँक जिगी एक राजान जैनामका त  
 कर अयवमका पालन करना शुरू कर दिया, और जा जा तिर्चय  
 रणजक लिय पूर्णताओकी आरस जानीरे भट की हुई थी, यह  
 उसने अत कर ली। दैन्योग वहाँ मूर्च्छा हुआ, बहुतसे - १३ व  
 हानी होगई। इससे राजाक मनमे शका उ पत्र हुई कि मन चिरपा  
 जैनधर्मका छोड़ दिया है इधी कारण मरे राग्यना दुःशा हुई है। यह  
 फिर शारधचनोका मत होकर जिनधर्मकी उपासना करन लगा, और  
 स्वार्थीन की हुई सपति भी जिनधर्मोका भट कर दा। इस वगैर वि-  
 शय राजके लिये "सनातन जैन पु दूधरेका अक तीसरा" रसा। इस  
 से इतना ही आशय लेनेकी आवश्यकता है, कि पूरकाल मे ११३३  
 राष्ट्रीय धर्म था। राजा तथा प्रजा सभी इसक अनुयायी थे। राजा  
 "शिवप्रसाद सितारेहि-इ" न जैन न हो कर भी अपने निर्माण किये  
 हुये "भूगो-हस्तामलक" मे लिखा है कि दो द्वाइ हजार वर्ष पहिले  
 दुनिया का अतिक माग जैनधर्मका उपासक था।

### जिनचैत्य (जिनमदिर)

"रम्य येन मिनालय निजमुत्पापान्न कारापित,  
 भाक्षार्थं स्वधनेन शुद्धमनसा पुसा सदाचारिणा।  
 यद्य तेन नरामरेद्रमहित तीर्थक्षराणां पदम्,  
 प्राप्त जन्मपुत्र ह्येन जिनमद गोत्र समुद्योति ॥

अर्थ—जिस शुद्धमनसाके सदाचारी भक्त्यात्मान अपने हाथ

हुए धनसे आत्मकल्याणके निमित्त जिन मन्दिर बनवाया है, उसने ससारमें सारभूत तार्थिकर पद प्राप्त किया माना जाता है। उसने अपने जन्मका फल प्राप्त कर लिया, और अपने गौत्रको परम पवित्र करनेके शाय जिनशासनको उन्नतिक क्षिप्टर पर पहुँचाया।

### विशेष बणन।

अपन रहने बैठनेके लिये मकान, माले, आलने, घासले, कौब, बिडि में, शुक्र, तीतर इत्यादि पक्षि ठाग भी बना लन है। मनुष्य तो सर्वोत्कृष्ट शक्ति और ज्ञान सपन्न माना जाता है यदि वह अपने निवासका स्थान बना ल, तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? पर तु भाग्यवान वही माना जाता है कि जो अपनी शक्तिके अनुषार "जिनधैय" निर्माण करके व्यायोपार्जित लक्ष्मीका सफल करे। आचार्य श्री वप्पमट्टि सुरिजीने गवालियरके आम राजा पर महान उपकार किया था। अतएव राजा पुन पुन उनका भावभक्ति करनमें तत्पर रहता था, जबकि वप्पमट्टि सुरिजीकी सुरिपद पतिष्ठाके समयमें भी, मूपति स्वय उपस्थित हुआ था। और जैनश्रासवमें आगेवान बनकर अपने क्रीषमेस एक करोड सोनामोहरा लव कर उसन वि स ८११ में खानाय महाराजका पदमहात्सव किया था।

एक समय सुरिजी महाराजने गवालियर नगरका तफ प्रस्थान किया और महा जाकर राजाका उपदेश दना आरम किया, उपदश दत समय सुरिजीन यह कहा कि—

श्रारिय पुण्घान् प्राग् कुरुत निबर्किकरान् ।

बुवत किं करी ता य तेरसा रत्नसू रमा ॥ १ ॥

अर्थ—विशेषकर लक्ष्मी ने मनुष्योंका अपना किंकर ता बना ही रसा है, लक्ष्मी क मदस मोहित हाकर मनुष्य अपन कतज्योस परामुल तो हो ही रहा है। तथापि जिन पुण्यात्माओंने, अपने

कारणों से चलाया है, अर्थात् जिनने लक्ष्मीको अपनी इच्छानुसार व्यय किया है, उससे यह पृथ्वी रत्नपत्र कर्ता जाती है।

इस उपदेशको सुन कर राजान साठे तीनकाह सानामोहरे गन्ध-  
का सनकी अनक प्रतिमाये बनवाइ और उस विशाल मन्दिर, कि  
विषये वह प्रतिमाये स्थापन की गई थी, का रगभक्ष्य बनानमें २१  
हास साना मोहरे व्यय कीं और सया लाख सैन्य खच करक उन्होंने  
मूल मध्य का रिपेर काम कराया। आचार्य महोदयके उपदेशसे राजाने शत्रु-  
का गिरिनारक मन्दिरोंका जीर्णोद्धार भी कराया (दिसा उपदेश तरंगिणी) कलि-  
कालकृतवज्राहेमचन्द्रमूरिजाक उपदेश से जिनपत्र प्राप्त करके चालुक्य कुल  
दीपकमहाराजकुमारपालने तारगाजी और खमान प्रमुख स्थानोंमें १०००  
नवीन जिनमन्दिर बनवाये थे। अपने पिता त्रिभुवनपालक नामसे पाटणाय  
उन्होंने "त्रिभुवनपालविहार" नामक (पुर) बहुतर देव कुलिका सहित विशाल  
मन्दिर बनावाया था। उस परमाहृत न२४ सोनकी २४४ जनकी, चौबीस पीतलका  
हरपादि अनेकानक जिनपतिमा बनवाकर उस महा मन्दिरमें स्थापन की थी  
१२५ अगुरुप्रमाण अरिष्टरत्नकी प्रतिमा श्रीनेमिनाथ स्वामीकी बनवाकर  
मूकनायक पत्र स्थापन की थी। इस मन्दिरके बनवाने में ६ क्रोड अशकियों  
सर्भकर पुण्याधिक मूपालने जिन शासनकी और अपने पूर्य पिताकी  
प्रभूत सेवा बजाई थी। उस मन्दिरमें उदयन, आम्रदेव, कुवरदत्त, अमय  
कुमार और बाहडदेव आदि अठारह मुख्य मुख्य धनपति श्रावण  
गीतगान नृत्यआदि ठाठ पूर्वक नित्यधर्म क्रिया किया करत थ। इस मन्दिर  
को कुमार पालके उत्तराधिकारी अजयपाल ने नष्ट क दिया था, इस म-  
न्दिर की नीवमें से जो पाषाण की विशाल शिला निकली है उन्हें हमन  
अपनी नजरसे देखा है वे सब "गायकवाड" सरकारक स्वाधीन हैं  
परन्तु उनशिलाओंसे अनेक मन्दिर तयार, या रिपेर हो सकने थ।

उपदेश तरंगिणीमें लिखा है, कि मध्यतिराजा तीनवड भरतक्षेत्रका वि-

जय करके सोलह हजार मुकुट-धराजाओं का अपनी आज्ञा मना कर उन सर्व भूपतियोंसे परिवृत्त हो कर उज्जयिणाम आया, तब लोगोंने सब आडम्बर पूर्वक उसका प्रवशासक कहा। सब राजा प्रजाको यथोचित प्राणि दान इकर सबक उतारा की व्यवस्था कर अब अपनी पूज्य माताको प्रणाम करने गया तब माताने उसके आनपर किमा भी प्रकारका हर्ष प्रकट न किया। सम्प्रति न क्रिश्च नमस्कार कर क पूजा, पूज्य माता आव भरत क्षेत्र को स्वार्थीन करके मे कइ वर्षोंसे तुम्हारे चरणोंमें आया हूँ तथापि तुम्हारे चेहरे पर जैसा चाहिय वेसी खुशी न देत कर मुझ मेर किसी अपराधका आशका हानी है। परन्तु वारम्बार स्मरण करनेपर भा मुझे भरा काइ दाप य न आनेस हृदय बन्ध व्याकुल हो रहा है। अगर अज्ञानता स जो कोई दीप मुझसे हुआ हो तो आप पुनर्वसला हो मुझ क्षमा प्रदान करा। मातान गमीर स्वरसे जथाव दिया, पुन आग स सप्तरमें पूरा पुण्यवान है। तरी माग्यरेखा प्रतिदिन चन्दी है, तरा कीर्ति यह मरी ही कीर्ति है, पर तु "नर कागमम् राग्यम् स्मृतम्" इस वाक्यका मूठ कर तेरा मन आरभमे मशगूल है यह मेरा उदासीका कारण है। अगर तू दिग्विजय के क्षत्रामे प्रतिग्राम प्रति नगर एक २ चैत्य भी बधाता रहता तोभी तरा आरभजय पाप अल्प होना रहता, और मुझे तरा मुक्त देख कर खुशी भा होता। इस बातको सुनकर राजाने निर्मितियोंको बुलाकर पूजा मरा आयु कितने वर्षोंका है? निर्मितियोंने राजाका आयु १०० वर्षका बतलाया। राजाने आजा दा कि १०० वर्षक २६००० दिन हाने हैं, मेरे आयुके दिनों जितन जिन चैत्य मर राग्यमे तैयार हान चाहिय।

मंत्रियान वैसा हा करना शुरू किया। प्रसिद्ध है कि—कमल कम एक मन्दिर रोज नवीन तयार कराक राजा अपना भाग्य चरणोंमें दंडना किया करता था, और नया समाचार दे कर उनके आदेशका पालन

किंग करण था । जिन्हा मी हे कि " भवन्तिहि महारमानो युवाशा-  
म्परव " ।

सैलुची शताब्दीमें रत्नमण्डणगणिने ' उपदेशतरंगिणी ' नामक ग्रन्थ  
रचारा है वह अपने सत्तासमयमें लिखते हैं कि वत्तमान समयमें मी  
विजुदेशके मरोठपुरमें सम्प्रति राजाकी बनवाई ८५ हजार पीतल  
की प्रतिभाये मीरूढ है ।

रत्नमण्डणगणिक श्री धर्मवोषसूरिजी के उपदेशसे पेशवाशाह आर  
जने लडके शासन शाहने विक्रम सम्वत् १७२१ म " जीरावला"  
राज्याय " सानुजयगिरि " बंगरहनीयोपर ( ८६ ) मन्दिर बनवायेथे,  
और उन सब मंदिरोंके गिखो पर सोनेके कठस चढाय थ । इतना  
ही नहीं बकि- ' दौलतानाद " " ओंकारपुर " बंगरह नगरेमें अन्य-  
दर्शनानुयायी लोग धमदधके कारण मंदिर नहीं बनाने देने थे, पेशवा-  
शाह समझते थ कि इन इन स्थानों में मंदिर का होना सास  
लामका कारण है । हम लिये उन्हों ने खुद वहा जाकर उन गाम नग-  
रोके राजाओंके मन्त्रिओगोंके नामसे दानशालाएँ जारी करदी, यथेच्छ  
सान पान मिठनसे दश देशान्तरके याचक लोग मन्त्रिओगोंका यश गाते  
लग । मन्त्रियोंने सोचा कि हमने तो किसीको कुछ दिय नहीं । यह सब  
याचक हमारी कीर्ति गा रहे हैं इसमें कोई साम कारण होना चाहिये ।  
इयाप्त करने पर मालूम हुआ कि " मांडवगढ " का राजमाय  
पेशवाशाह मन्त्री यहाँ आया हुआ है, उसने अपनी सम्जनतासे  
हमको यशस्वी बना दिया है । इस लिये हमको मी चाहिये कि उस  
सुने ग्यकी योग्याके अनुसार उसे इच्छित देकर सम्मानित करना,  
और अपने सिखड़े हुए भरणको उतारना । यह सोचकर उ-होने  
बडी प्रतिष्ठापुत्र पेशवाशाहका अपने पास बुलाया, बहुत कुछ मानसन्मा-  
न देकर कहा " आप जैसे धर्ममूर्ति-पुयारमाओका भार



ही असाम उपकारका कारण है, तो फिर हमारे नामकी दाशालाएँ, शोल कर निष्कारण यश और कार्तिक भागी बनाकर आप हमका अति प्रदानी क्यों बना रहे हैं ? भला हम इस आपके उपकाररूप बोसेको कैसे उतार सकेगें ? ससारमे उपकारक बदलेम प्रत्युपकारके करनेवाल तो जगह २ मुलम हैं परतु बिना ही प्रथनाके किय परका हित करनेवाले और उसमे भी कीर्ति अन्यका दिलानवाल मनुष्य अरुणा जगन्म है हा नही, और है भी ता कोइ आप जैसे बिरल ! ! ! धन्य है अपक जन्म और जीवितको !

“ आत्मार्थं जानलाकेऽस्मिन्, को न जीवति मानव ? ।

“ पर परोपकारार्थं, या जीवति स जीवति ॥ १ ॥

“ परोपकारगून्यस्य, विग्नमनुष्यस्य जावितम् ॥

“ जीवतु पशवो यथा, चमाभ्युपकीर्यन्ति ॥ २ ॥

अपनी जीवन वृत्ति के निर्वहिक लिये जीवमात्र अनेकानेक उपाय कर रहे हैं, कोई साता है, कोई घबटा है, काइ चुनता है, काइ तनता है, कोई सरीदता है, कोइ वेचता है, एक दाता है, अन्य माहक है, किसीका किसीकी वाणिज्यस, अनकाकी जलस, अनकाकी इधनमे, भेन्नस, कइयोकी वास्तिस, कइयोकी वनसे, आज्ञाविका चल रही है । जाहरी जवाहरात के, बजाज बजाजीके, शराफ शराफीके, परीक्षक परीक्षाक, दलाल दलालीके, एव अदनास अटना और बडेसे बडा जीवमात्र अपनी अपना क्रियासे आजी विका करता है, यह सर्वे क्रियाएँ मनुष्य अपनी जीवनचर्याके निर्वहिके लिये करते हैं । ससारमे ऐसा काइभा जीवतामा है कि जिसकी प्रवृत्ति अपने जीवननिर्वहिक लिये न हो ? हां यह बात एक और है कि—किसीको असाम सपति होते भी जन्म बलन लगी ही रहनी है, और कोइ स्वल्प लाभस भी सतुष्ट रहता है । भमण काहो, बालिक अवजो रुप योके होते हुए भी आर्त्तरीदस दिन गुजारता था, और पुनिया श्रावक

कल्प' इ दुर्लभा वसाह मे भी सनेप मानता या । परतु प्राणीमात्र  
 कत वन आत्मानिमित स्वाथके साधन में प्रणीत होते है । ऐसा कोई  
 लक्ष्में प्रापदही होगा जो अपने स्वार्थ को मनसं भी भूकर परका  
 क हार साधन करता हो । जगनमें शुभजीवन उसी पुण्यात्माका है  
 है सोनकार क न्यि प्रीता हो ॥ १ ॥ उस मनुष्यका जीवन असार है,  
 क ही नहीं किक विकारका स्थान है, जिसने अपने अमूय्य समयको  
 क, धूर्शोर गुमा दिया है । उस निकम्मे मनुष्यकी अपेक्षा पशुओं  
 क वन अच्छा है कि जिसे दुनियाके असह्य काम सुभरते हैं । जीना  
 क वन वही चीज है किक जिस जीने जागते मनुष्यने परोपकार करना  
 ही है ता उसके जानेकी अपेक्षा भरोहुए पशु भी अच्छ है कि जिनके  
 कष भी ससारके अनक काम बनत हैं । साधसिद्ध बात है कि "देवता"  
 कियोप मग रहते हैं, नरकके नारकियोंको दुःखोस पुरसत नहीं, तिर्यच  
 क उपकारको समझने ही नहीं । क्योंकि वह अज्ञानी हैं । सिफ उपकारका  
 किकार है वा मनुष्योंको ही है । फिर सोचना चाहिये कि अधिकारीही  
 किकारसे पराहमुख रहेगा तो नीचे लिखा हुआ वाक्य क्या इत्ता है ?  
 किकारको पाय कर कर न परउपकार ।

ताहुके अधिकारमें रहो न आवि अकार । । ।

॥ समाहित के ६५ भेद ॥

[ चार महदना ]

( १ ) 'परत्यर्थ सत्यव'—जीवादि नन पदार्थोंका यथाम ज्ञान  
 ज्ञान ।

( २ ) 'परमार्थज्ञानवृत्तव'—गीतार्थ साधु मुनिराज की सेवामक्तिका  
 करना ।

( ३ ) 'ध्यापन्नदर्शनवर्जन'—नि हव, यथाउद आदि वेशविदबकोंका  
 परिचय न करना ।

( ४ ) 'कुदशनवजन'—मिप्यादृष्टि विपरित श्रद्धावालेका परिचय न करना ।

[ तीन उिद्ध ]

( ५ ) सुश्रूया—शास्त्रसिद्धा तके सुननेकी तीव्र दृष्ट्या ।

( ६ ) धमराग—धर्मक्रिया प्रगस्त अतुष्टान करनेम अनरगमीति

( ७ ) वदावध—गुणधान साधु साध्वी श्रावक श्राविका की यथेचित सेवा ।

[ १० प्रकारका विनय ]

( ८ ) अरि त विनय ।

( ९ ) सिद्धविनय ।

( १० ) शैत्यविनय ।

( ११ ) श्रुतविनय ।

( १२ ) धम्मविनय ।

( १३ ) साधुविनय ।

( १४ ) आश्रायविनय ।

( १५ ) उपाध्यायविनय ।

( १६ ) पत्रधनविनय ।

( १७ ) दशन विनय ।

[ तीन शुद्धि ]

( १८ ) मनशुद्धि ।

( १९ ) वचनशुद्धि ।

( २० ) वायाशुद्धि ।

[ पाच दाषोका वर्जन ]

( २१ ) गतादोषका वर्जन ।

( २२ ) आह्लासा दोषका वर्जन ।

- (२३) त्रिविक्रि सादोषका वजन ।  
 (२४) परतापिक ( धर्मविरोधी ) की प्रसंसा न करना ।  
 ( ५ ) परतापिक का परिचय न करना ।

[ ८ प्रमाणक ],

- ( २६ ) समयके अनुसार शास्त्रका पाठ ।  
 ( २७ ) धर्मकथा कहनेमें प्रमाण ।  
 ( २८ ) का. विवादमें जयपताका लेनवाला ।  
 ( २९ ) निमित्त ( ज्योति शास्त्र ) का पारगण ।  
 ( ३० ) उत्कृष्ट तपस्याका करनवाला ।  
 ( ३१ ) ग्राहणा प्रमुख विद्या जितक सिद्ध ही ।  
 ( ३२ ) अजनचूर्णादिक प्रयोगका जाननवाला ।  
 ( ३३ ) कावसा के भेदोंका जाननेवाला शिष्यरवि ।

[ पाच भूषण ]

- ( ३४ ) क्रियाकौशल्य—धर्मकर्मके करनेमें चतुराई ।  
 ( ३५ ) वायसेवा—समिप्रपक्षि मनुष्योंका सहवास ।  
 ( ३६ ) भक्ति—तीर्थकरदेव और साधुसंगका आदर ।  
 ( ३७ ) दृग्ता—समकितका करनामें स्थिरचित्त ।  
 ( ३८ ) प्रभावना—जिन शासनका शोभाका बढ़ाना ।

[ पाँच लक्षण ]

- ( १ ) अचरणी पर भी सममाज रहना ।  
 ( ४० ) म' र'ि, र'द' शि'र'दा ग'गन ।  
 ( ४१ ) ससारस ठदास रहना ।  
 ( ४२ ) दुष्का देख मनमें दगा जानी ।  
 ( ४३ ) वीरामर रचने पर अन्त श्रद्धा रखनी ।

[ ६ प्रकारकी यातना ]

अप्य तीर्थ क साधु को उत्सुक माने बन्धनकामनी गध्यादिक धारक  
देवके साथ ६ प्रकारका व्यवहार भाभके लिये नहीं करना ।

- ( ४४ ) वदना—हाथ जोड़ने ।
- ( ४५ ) नमस्कर—शिर नमाना
- ( ४६ ) दान—अज्ञानिका दाना ।
- ( ४७ ) अनुप्रदान—बारवार दाना ।
- ( ४८ ) आलाप—बुलाना ।
- ( ४९ ) सलाप—पुन पुन बुलाना ।

[ ६ आगार ]

- ( ५० ) राजाका आगार ।
- ( ५१ ) समुदायका आगार ।
- ( ५२ ) शत्रुवानका आगार ।
- ( ५३ ) देयताका आगार ।
- ( ५४ ) गुप्तिग्रह ।
- ( ५५ ) वृत्तिकागार ।

[ ६ प्रकारकी मान ]

- ( ५६ ) समकितको चारित्र मूठ समझना ।
- ( ५७ ) समकितको चारित्ररूप मासादका द्वार मानना ।
- ( ५८ ) समकितको चारित्रनिगन रखनेका खजाना समझना  
चाहिये ।
- ( ५९ ) समकितका धर्ममासादकी नाव समझना चाहिय ।
- ( ६० ) समाकित आधार है आर चारित्र आधेय है ।
- ( ६१ ) समाकित चारित्र रसका रखनेका पात्र है ।

## [ ६ स्थानक ]

( ६२ ) जीव—आत्मा—चेतन्य है ।

( ६३ ) और वह नित्य है ।

( ६४ ) जीव कर्मोंका कर्ता है ।

( ६५ ) जीव कर्मोंका भोक्ता है ।

( ६६ ) निर्वाण—मोक्ष है ।

( ६७ ) और उसका उपाय भी है ।

( २ )

सम्यक्त्व एक प्रकार, दो प्रकार, तीन प्रकार, चार प्रकार, और पाच प्रकार होता है ।

एक प्रकार  
सम्यक्त्व } धीतराज जिनश्वर दक्क कथन किये तत्त्व पदार्थ पर  
श्रद्धाका हाना एक प्रकारका सम्यक्त्व कहा जाता है ।

दो प्रकार  
सम्यक्त्व } "से मार्ग भला हुआ जोद आदनी पिनाही निमीक माग  
नानाव किरता किरता "वयमेव मागपर आ जाता है और  
जोद माग साताक मार्ग के बतानस मागपर हो जाता है।

इसी प्रकार कितनक जीवोंको स्वाभाविक सम्यक्त्व प्राप्त हो जाता है, उस सम्यक्त्वका 'नैसर्गिक' सम्यक्त्व कहते हैं और कितनेक जीवोंको शुक्र महाराजके उपदेशसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है उस सम्यक्त्वको 'औपदेशिक' सम्यक्त्व कहने है । एवं सम्यक्त्व वरु दो प्रकार हैं ।

अथवा 'निश्चय सम्यक्त्व' और 'व्यवहार सम्यक्त्व' की अपेक्षा सम्यक्त्व वरु दो प्रकारका है । आत्मा का वह परिणाम कि जिसके होनामे ज्ञानादि मय आत्माकी शुद्ध परिणति होती है उसको 'निश्चयसम्यक्त्व' कहते हैं और कृदव, बुगुरु, कुमागको त्याग कर सुदेव, सुगुरु आर सुरम का स्वीकार करना उसको 'व्यवहारसम्यक्त्व' कहते हैं । अथवा धीतराज

सम्यक्त्व 'निश्चय सम्यक्त्व' और सरल सम्यक्त्व 'व्यङ्ग्यार सम्यक्त्व ।'

अथवा 'द्रव्यसम्यक्त्व' और 'भावसम्यक्त्व' की अपेक्षा सम्यक्त्व दो प्रकार है । जिनधर दवका कहा वचन ही तत्व है पक्षी श्राद्धा सो है परतु परमाथ नहीं जानता है, एसे प्राणीक सम्यक्त्वका 'द्रव्यसम्यक्त्व' कहते ह । और परमाथका जाननेवालक सम्यक्त्वको 'भावसम्यक्त्व' कहते हैं । अथवा क्षायोपगामिक सम्यक्त्व पौद्गलिक हानिस द्रव्यसम्यक्त्व है और क्षायिक तथा औपगामिक सम्यक्त्व आत्मपरिणाम हानिस 'भाव सम्यक्त्व' है ।

( ३ )

तीन प्रकार सम्यक्त्व } १ कारक, २ राक्षक, और ३ दीपक, ऐसे तीन प्रकार सम्यक्त्वक होत है । देववन्दन, गुरु वन्दन, सामायिक प्रतिजनण आदि जिनात्त क्रियाओंक करनसे जो सम्यक्त्व होव उसको 'कारक सम्यक्त्व' कहते हैं । इन्हीमे भवि होनस 'रोषक सम्यक्त्व' कहा जाता है । स्वय मिथ्या दृष्टि हाने पर भी दूसरोको उपदेश आदि द्वारा दीपकवत् प्रकाश करे अथवा दूसरे जात्रोको सम्यक्त्वकी प्राप्ति करावे वह 'दीपक सम्यक्त्व' है ।

चार प्रकारका सम्यक्त्व } पूर्वोक्त क्षायोपशमिक आदि तानो सम्यक्त्वक साथ साक्षादनको मिलानस सम्यक्त्व चार प्रकारका हाता है । औपशमिक सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वक स मुक्त हुआ जीव अबतक मिथ्यात्वकी नहीं प्राप्ति करता तबतक क उसक परिणाम विशेषको साक्षादन सम्यक्त्व कहते हैं ।

पांच प्रकारका सम्यक्त्व } पूर्वाप च १, २, ३, ४, ५ का पांच प्रकारका सम्यक्त्व कहा जाता है । क्षायोपगामिक सम्यक्त्वक वरमे वतमान जीव अथ प्राय सातो प्रकृतियोंको क्षय करक सम्यक्त्व मोहनाय क अतिम पुद्गलक रसका अनुभव करता

है उस समय के उस के परिणाम को वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। वेदक सम्यक्त्व बाद उसे क्षायिक सम्यक्त्व ही प्राप्त होता है। वेदक सम्यक्त्वका क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें अंतभाव होता है।

उत्तराध्ययन सूत्रके २८ वे अध्ययनमें—१ निसर्ग रुचि, २ उपदेश रुचि, ३ आज्ञारुचि, ४ सूत्ररुचि, ५ धीजरुचि, ६ अभिगमरुचि, ७ वित्ताररुचि, ८ क्रियारुचि, ९ सक्षेपरुचि और १० धर्मरुचि के नामसे सम्यक्त्वके दश भेद भी बताये हैं। प्राप्ति करावे उसका दीपकसम्यक्त्व का इसीको सम्यक्त्व एत \* यह दीपक सम्यक्त्व अभव्य जीव साधुपनमें होता है। उसवक्त उसमें माना जाता है।

अथवा १ क्षायोपशमिक, २ औपशमिक और ३ क्षायिक की अपेक्षा तीन प्रकारका सम्यक्त्व माना जाता है।

अनतानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, तथा सम्यक्त्व मोहनीय, मित्रमोहनाय और मिष्यारत्व मोहनीय इन सातों कर्म प्रकृतिक क्षायोपशमसे जीवको जो तत्त्वरुचि उत्पन्न होव उसको क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इन्हीं सातोंके उपशम होनेसे आत्मामें जो परिणाम होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इन्हीं सातोंके क्षय होनेसे आत्मामें जो परिणाम विशेष होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं।

## ॥ ज्ञानभक्ति ॥

पठ पठति यत्स्वाऽशादिना लेखय म्यै,  
स्मर वितर च सागौ ज्ञानमत्तद्धि तत्त्वम् ।  
श्रुतलक्षमपि पुत्रे पश्य शर्यभर्वाऽदा-  
वजगति हि न सुधाया पानत पेयमयद् ॥ १ ॥

( अर्थ ) हे भव्यात्माओ ! ज्ञानका अभ्यास करो। और पढ़ने पढ़ाने वालोंको अज्ञादिसे सहायता दो। न्यायोपार्जित द्रव्यसे ज्ञानके प्रस्तक-



लिखाया, याद करो, साधु, साध्वी, श्रावक,—श्राविका, को ज्ञान  
ज्ञान दो ।

यह ही तर्क है। दत्ता शायमय सूरिजीन अपने पुत्रको स्वल्पमात्र भी  
ज्ञान दकर निरस्तारित किया। उसारभं अमृतसे बढ़कर और कहीं अधिक  
वस्तु है ? । १ ॥

[ वि वि ]—एकटा किंग हुआ भन साथ ज्ञानशाला नहीं है ।  
उसक पैदा करनमे, रण करनमे, लडनेमे, अनेक कष्ट सह्य पडत है।  
धनक नष्ट हुआनमे औ आर्त्तध्यान आर रीद्रध्यान द्वारा ह उसस जीव  
दुगतिमे चला जाता है ।

एसा हुशामे मनुष्यका चाहिये कि अनकानक कष्टस कनाए हुए  
पैसका शुभभागमे व्यय कर । व्यय करनक मागोंमेस सानभाग मुख्य है—  
जिनविम्व १ जिन-धैत्य २ ज्ञानाद्वार ३ साधु ४ साध्वी ५ श्रावक ६  
श्राविकाप जिनधैत्य-जिनविम्वका वणन पहलकर दिना गया दे ।

ज्ञानाद्वारक सवधमे जानना चाहिय कि—लिखना लिखाना रण, पापन  
करना अनकानक लोमे फैलाना, लाइमरा करनी, शिक्षास प्रचार करना,  
साधु साध्वी श्रावक श्राविका—आर माविक मागानुसारी जनोका जनक  
समाम सावन दन, मिलान, शासन की सामाक लिय दाशविक द्योश  
प्रचार करना । उपदेशक तयार करक अयास दगामे उड़े भजकर  
धर्मका फैलाव करना, यह सब ज्ञानभाक्ति पाता जाता है । सब प्रयत्नस  
सवज्ञानविन ज्ञानका सर्वत्र प्रसार करके उसका सर्वोत्तम स्थान मिलना  
यह उत्तमातम ज्ञानसेवा—ज्ञान महिमा—ज्ञान—पूजा कही जाती है ।

विश्व की बाहर्वी स सालहरी सनातक साधुओं मे पठन पाठन पा  
प्रचार अल्प हो गया था, परंतु उसवक्त भी आधायनि कायण कायम  
कर रखा था कि—साधु प्रतिदिन १०० श्रावक लिख ता ही उसरो विम्व  
और शाक दना अ पथा नहीं ।

ज्ञानसागर सूरिजीके मुखसे मांडवगढ के रहनेवाले सुश्रावक सग्राम  
 त्रिंशती न वडा श्रद्धा भाक्तिसे श्री 'भगवती सूत्र' सुना। उस  
 ज्ञानप्रदीप धारवचनोंके अनुगामा जहाँ जहाँ 'गोयमा।' पद आता या  
 वहाँ वहाँ एक एक अशार्फि रखकर ३६ हजार अशार्फिया खचकर  
 द्रव्य भगवती सूत्र का आराधना की। सग्रामसिंह जब जहाँ एक सानामो-  
 हर रखता या उस वक्त उसकी माता आधी अशार्फि और उनकी पत्नी  
 एक अशार्फि का चतुर्थ खड रखती थी। इस प्रकार श्री भगवती सूत्र के  
 पुनः में उन्होंने ६३००० सानामोहरे चढाद उसमें ३७००० हजार  
 मेहर और मिलाकर उस सपूर्ण १ लाख द्रव्यसे 'कल्पसूत्र' 'कालिका-  
 चण्ड कथा' नामक ग्रंथ सानहरी अक्षरोसे लिखाकर भडारोंमें रखाए।  
 यह घटना वि स १४५१ में हुई थी। कुमारपाल राजाक स्वर्ग-  
 वासक बाद जब अजयपालन उत्प्लव मचाया; तब कुमारपाठके धन-  
 गय कर्योंका घस दसकर आग्रभट्ट ने प्राचान और नवीन जैन प्रथाको  
 १०० उगेपर लादकर जयसलमर पहुचाया।

सुना गया है कि बल्लभी नगरी क भगक समय ३००००० श्रावक  
 कुम्भ और कितनक धर्माचार्य शास्त्र आर जिन-प्रतिमाओंको लेकर  
 मारवाड तक चल निकले। उन्हाने मारवाड में आकर जोधपुर के मिलेमें  
 था 'वाली' गाम रुदा जाता है उसका आवाद किया, और अपने  
 प्राणोंसे भी प्रिय मानकर शास्त्र और भगवत्प्रतिमाओंकी रक्षा करत  
 रहे। कुमारपाल राजान कलिफाल सरश श्री हेमचन्द्रसूरिजी के बनाए हुए

- ( १ ) अनवाप सग्रह
- ( ० ) अनेकाथ फाप
- ( ३ ) अमिधानचिन्तामणि
- ( ४ ) अभिधानचिन्तामणि परिशिष्ट
- ( ५ ) अकार भूडामणि

- ( ६ ) उणादि सूत्र वृत्ति  
 ( ७ ) उणादि सूत्र विवरण  
 ( ८ ) छान्दोग्यशासन आर वृत्ति

दर्शन म माला

- ( ९ ) घातु पाठ आर उसकी वृत्ति  
 ( १० ) धातुपारायण आर उसकी वृत्ति  
 ( ११ ) धातुमाला  
 ( १२ ) निघट्ट 'य'  
 ( १३ ) बलाबल सूत्र वृत्ति  
 ( १४ ) हंसशिखर  
 ( १५ ) सिद्ध हंस शान्तशासन

( बह्वृत्ति और लघुवृत्ति )

- ( १६ ) इय समष्ट नाम माला  
 [ १७ ] इय समष्ट शाखाद्वार  
 [ १८ ] त्रिद्वानुशासन सर्गीक  
 [ १९ ] त्रिद्वानुशासन विवरण  
 [ २० ] त्रिधाप्रदशाखा पुस्तक शक्ति  
 [ २१ ] परिशिष्ट पत्र  
 [ २२ ] हंसशाखाथ मन्त्रा  
 [ २३ ] ससृष्टन द्वाश्रय  
 [ २४ ] माकृत द्वाश्रय  
 [ २५ ] हंसशाखानुशासन  
 [ २६ ] महावीर द्वात्रिंशिका  
 [ २७ ] धीर द्वात्रिंशिका

[ २८ ] वीतरागस्तोत्र

[ २९ ] पांडवचरित्र

इत्यादि अनेक त्रयोकी अनेक प्रती लिखाकर राजाने भारतवर्षके अनेकानेक गाम नगरोंके ज्ञानमहारोमे रसवाइ थी ।

इसके अनिरिक ( ११ ) अग ( १२ ) इष्य ( १० ) प्रकीर्णक, ( ६ ) छेद, ( ४ ) मूल, नदि, अनुयागद्वार, इन ( ४५ ) ही आम-मों की एक एक प्रति सोनहरी अक्षरामे, और अनन्य प्रते स्याहीसे लिखाके मुपतिने क्षमात, घोलका, करणावती चत्रावती, इगरपुर वीजापुर, प्रहादनपुर, राघनपुर, पादलितपुर ( पालीताणा ) श्रीणदूग, ( जुतागड ) मांडवगड, चित्ताडगड, जयसलमेर, बाहडमेर, दमावती, बढोदरा, आ कोरा, उज्जैन, मथुरा, प्रमुख उत्तम उपयोगी स्थानमें रखवादी थी ।

इसके आलावा—रुणदेव, सिद्धराज, भोमदेव, यीसलदेव, सारगदेव, वीरधवल सोमसिंह अदिराजाओंने भी उन ज्ञानमहारोकी वृद्धिमें पुष्कळ मदद दी है ।

और मंत्री उदयन, बाहड, अवड, वस्तुपाल, तपपाल, कर्म्मोशाह, समराशाह, उडाशाह, मोहनसिंह, साजनसिंह आदि अनेक राजमान्द मात्रियोंने ता अपनी सुपतिका प्राय उपयोग ज्ञान और भिनचेय्याके अदर ही किया है । परंतु वर दु खकी बात है कि दश और समाजके दुर्दैवसे कुमारपाल आदि के पुस्तक सैकड़ों वर्ष पहले ही नष्ट हो चुके हैं । इसका कारण प्राय प्रसिद्ध ही है कि ज्ञा लोग अपने माणोंको हाथकी दधेलीमें लकर सैकड़ों वर्षातक इधरसे उधर और उधरसे इधर नार मन्ते फिर है वर इन पुस्तकालयोंका सनया कैसे बचा सका वे ?

कुमारपालके लिखाये पुस्तकोंका नाम ता उसका उत्तराधिकारी अजयपालने ही कर दिया था इस्वीसन ११७४-७६ में गुजरातके अजयदेव नामक एक शैवराजाने राज्यपर आतेही बड़ी निर्दयतासे जिनोका

वध कराया, और उनका गुरुओंको भी मरवा डाला ऐसा दशमो वह उन-  
के पुस्तकोंको जिन पर उस धर्मका आधार था जैसे 'श्रद्धा सक्ता  
गा । विसेंट ए एम ए का भारतका प्राचीन इतिहास ॥ ]

कुमारपालके बाद बहुत ग्रंथोंका संप्रह वस्तुपाठ राजपालन कराया था  
और उसका नाश अलाउद्दीनक अत्याचारोंसे हो गया ।

परमश्रद्धालु जैन लोगोंने जो बचा लिया था आज भी पाटण, सभात,  
लीवडी, जयसलमेर, अमदावाद आदि शहरों में दयात है ।

[ सन १९१६ जनवरीका सरस्वतीमें 'पाटणक जैन पुस्तकभंडार'  
इस नामक लेखसे, और अन्वय प्रबंधोंसे मालुम होता है कि कुमार-  
पालने २१ बड़े बड़े ज्ञानभंडार करवाये थे, कुमारपालक किये कराये  
सब शुभकार्योंके ज्ञान के लिये मरा लिखा " हिन्दी कुमारपाल चरित " ]  
देखिये । ]

## सधभक्ति

लोकेभ्यो नृपतिस्तनोपि हि वरश्चकी ततो वासव  
सर्वेभ्योऽपि जिनेधर समधिको विश्वत्रयीनायक ।  
सोऽपि ज्ञानमहोदधि प्रतिदिन सव नमस्यत्यहो,  
वैरस्वामिवदुःशतिं नयति त य स प्रशस्य तितो ॥ १ ॥

अर्थ—साधारण तौर पर दत्ता जाय तो चारही धनकी प्रज्ञासे राजा  
श्रेष्ठ मिला जाता है

राजासे भी सावभौम राजा ( चक्रवर्ती ) बड़ा है क्योंकि ( ३२ )  
हजार मङ्गलिक राजा उसकी सत्तामें है । राजा एक देशका स्वामी है,  
और चक्रवर्ति नरेण ( २२ ) हजार देशोंका मालिक है । चक्रवर्तिसे  
इन्द्रमहाराज बड़े हैं इस बातमें किसी प्रमाणका आवश्यकता नहीं यह  
बात सब संप्रदाय प्रसिद्ध है ।

और इन सभसे दवाधिवदव तार्थकर दव श्रेष्ठ है । ता भी आश्वकी

बल है कि ज्ञानके सागर जिनेधर परमा मा भी श्रीसधको नमस्कार करते हैं। ऐसे श्रीसधको आपत्तिग्रस्त जानकर देखकर जो जीव श्रीवज्रस्यामी की तरह सहायता देता है, वह सदाकाल धन्यवादका पात्र है।

श्री म्युलभद्र स्वामी का श्रीयक नामक ठोटा भाई था, आर यक्षा आदिक ७ बहिने थीं। उन सर्व भाई बहिनोने स्यूमीभद्र स्वामी क पीठे दीक्षा ली हुई थी। श्रीयक साधू तप करन मे कायर था। सवष्टरीके दिन बड़ी बहिन की प्ररणासे उसन उपवास कर लिया था। देव योग उसी दिन उसका मृत्यु हो गया। यक्षा को बडा पश्चात्ताप हुआ। उसने निश्चय किया कि मेरे कहने स साधु महाराज ने, शक्तिके न होनेपर भी तपस्या की इसलिये उसके प्राण गये ता ऐसे अनर्थ का पाप माथे आनेपर भी मैं कैसे जी सकती हूँ? अब मैं भी अनशन करूंगी। श्री सधन उसका ह्रतरहसे रोना परह्र उसने अपना सिद्धान्त अटल रखा। आखीर श्री सधने शासन देवीका आराधन किया, शासन देवाने श्रीसधक आदेशसे उस साध्वी को भगवान् श्रासीमधर स्वामीक समवसरण म पहुचाया। भगवदेवन अपने श्री मुखसे फरमाया कि ह यक्षा! तेरा अव्ययसाय साधु को तपस्या कराने का था, उसके मारणे का नहीं। वास्ते तू निर्दोष है। इस बातको सुनकर साध्वीने बडा हृष मनाया और श्री सधक किये का-उसगके प्रभावसे शासन देवीने साध्वीको सही सलामत मरत क्षेत्रमें लाके रख दिया।

महाप्राण ध्यानक करते समय स्थूलि भद्र वींगरह साधुओं की वाचना के लिये जब श्रीसधने भद्रबाहुसूरिको बुलाया, तब उन्होने सिर्फ इतनाही जबाब दिया। क, श्रीसधका परमान शिरोधार्य है, श्रीसधकी आशा मुझ मान्य है, म जो कुठ कर रहा हू तो श्रीसधकी सेवाक लियही कर रहा हू, इतन पर भी अगर श्रीसध हुकम करे तो मैं इस कार्य को

छाड़ कर वहाँ भी आन को तयार हू । और यदि भगवान् आ सध साधुओंको यहाँ भजता मै साधुओंको वाचना भी हू और मरा आरम किया हुआ काय जा कि अब समाप्त होने आया हूँ उसका भी पार पहुँचाऊँ । इस मरी प्राथना पर ध्यान दक पूय भास्य जैसा आदेश करेगा मै करनको हरनरहसे तयार हू । साचना चाहिये कि चीन पूव धर भी श्रीसधका कितना मान रखत है । इसक अलावा विष्णु कुमार मुनिको जब मेरु चूलापर समाचार मिला कि तुमको आसध बुलाता है ता मर चीमास मे अपने ध्यान काय को उाड कर भरत क्षत्र म आय ।

सध यह समुणाय का वाचक शब्द है, इस जैन भारिभाषिक शब्द स—साधु ( १ ) साध्वी ( २ ) श्रावक ( ३ ) श्राविका ( ४ ) रूप चातुर वण श्रीसधका ग्रहण हाता है ।

साधु साध्वा—' साधु ' यह शब्द ही मनारजक है, अमरसिंहन जहाँ अच्छे गुभ सूचक शब्दों का संग्रह किया है वहाँ लिखा है " सुन्दर—दचिर—चारु—सुषम साधु—शोमनम् "

शब्दशास्त्र—गणताआन साधु शब्दकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि " साधयति स्वपरकार्याणि इति साधु ! " सभार व्यवहारमे भी इजत आवश्यक साथ वणज करनेवालेका "साधुकार" कहत है । यह शब्द मागधी भाषाका है और सस्कृतस बना हुआ है । मूल सस्कृत शब्द ह "साधुकार" अच्छे कामोंका करनेवाला जब कि साधु शब्द हा उत्तम है तो उसका अर्थ क्यों कनिष्ठ हो सकता है ? जिनप्रवचनमे साधु का सयमी कहकर बुलाया है । सयमाका अर्थ होता है सयमके धारक—सयमरान्, वह सयम १७ प्रकारका हाता है । जस कि पाँच आश्वकोका त्याग, पाँच इन्द्रियों का नियग्रह, चार वधायोंका त्याग, तान दहका विरति, इन ( १७ ) वस्तुओंको सयम कहते हैं ।

किंचिद् विवरण—हिंसा ( १ ) झट ( २ ) चोरी ( ३ ) अवह ( ४ )  
परिग्रह ( ५ ) यह पांच आश्रव कहे जाते \* ।

स्नान ( १ ) रसन ( २ ) घ्राण ( ३ ) चक्षु ( ४ ) और श्रोत्र  
( ५ ) ये पांच इन्द्रिये कहे जाती हैं । इनके विषयोस भवना यह भी  
सयम है ।

क्रोध ( १ ) मान ( २ ) माया ( ३ ) लोभ ( ४ ) इस चोखडीको  
द्वया चतुष्क कहत हैं । इन चारही कषायोंका त्याग करना यह भी सयम  
है । मनसे, वचनसे, कायासे, स्वपरका बुल चिंतन करना उसको दह  
कहन है । इन तीनही दहोंका त्याग सो भी सयम है । पांच आश्रवोंका त्याग  
( ५ ) पांच इन्द्रियोंका निग्रह ( १० ) चार कषायोंका त्याग ( १४ )  
तीन दहकी विरति रूप ( १७ ) जो धम साधुका है, वह ही साध्वीका है ।  
साधु साध्या की भक्ति ( १ ) उनका बहुमान ( २ ) उनकी श्लाघा ( ३ )  
उनके उहाहका गोपन ( ४ ) यह चार प्रकारका विनय कहे जाता है ।

विशुद्ध हृदयसे की हुई मुनिसेवासे धनसाधनाहके भवम और  
जावानदके भवमे श्री ऋषभदेव स्वामीने आर नयसारके भवमे की  
हुई सवासे श्री महानोर स्वामीके जीने नयसार के भवमे जो तीर्थकर  
पदरूप कल्पवृक्षका बीज उपाजन किया था, उसमे कारण मुनि  
सेवाही था ।

ऐसे मुनिमहात्माओंको भोजन, वस्त्र, स्नान, वाष्ठासन, औषध, भेषज  
पुस्तक, वदना, नमस्कार आदि देनेसे दिलानस जीव अनंत पुण्य प्राप्त  
करता है ।

बाहु और सुबाहुके भव मे मुनियोकी सेवा कर्क मरत और बाहु-  
वलीव भवमे जो उत्तम फल श्री ऋषभदेव स्वामीके पुत्रोंका प्राप्त हुआ  
है वह प्राय समस्त जैन आसित परिचिन है ।



हर्षका समय है कि जिन शासनमें चाहेत्र पात्र मुनिगोका आम स्वतंत्रवाद व समयम भा मान है ।

परन्तु आपमें इतना अफसास भी है कि " माहृण मद्रा राण " इस शास्त्रवाक्य को मुगकर, श्री ठाणाद्र तुनम कह हुए " अम्मा पियसमा ण " इस मध्य अधिकार वाक्यको भी याद न ला कर, भा आ ध्यतिके अमणावासक व पानी हुए भी एक दूसरे साधु व एमम पदकर अपने और अपने मान उन आवापिय मुनियो व गान ठगान चाहेत्रमे वृद्धि क बदले हानि पहुचात ह उन गुरुमताका चाहेत्र कि— ' मरा तरा ' इस माननाका न रसव हुए सिफ गुणग्राहक हा बन रहे । शासनमें एक दूसरे का मतभेद हाना स्वाभाविक ह, परन्तु उस बातका नियम करने के बदले मनापनी क जासमें आवर शासनमूळ विनय गुणका भूल जाना, एक दूसरे के साथ असम्य अशाल शत्रोसे पण आना, यह ता किसे भी ताहम शासनकी रीति नीति नहीं कहा जा सकता । जिस जिन शासन का लगभग आधा सत्कार मान दता था जिस क सचाण्य वीत रागदेव है, उस सप्तदायकी रियति आज अति शासनाग हा रही है । विचारे मिय्या दृष्टि कटलात वैरागी लाग तो १०-२० एकठ एक अगह बैठकर बागे—चाणेा, लादीगे—पीवंग, धम चचा करेग परन्तु आज एक पिता के पुत्र कहलात हुए जैन क्षमाश्रमण एक मथातम हो सलवारो क ममान एक उपाश्रय मे न रह सके, एक मडलीमें बाह्य व्यवहार न कर सके, एक दूसरे को रास्ते जाते नमस्कार न कर सके, खेदका समय है हिन्दु व पास मुसलमान आव या रस्ते जता मिल ता यह भी उसको घर आनेपर पानी पिलाता ह, रास्ते जाता ' साहेब सलामत ' कह कहकर शिष्टाचार करता है, मगर हमार जन साधुओंका उतना शिष्टाचार भी नहीं । इससे बढ़कर शोक और क्या होगा । एसी दशामें मातापिताकी उपमाको धारण करनवाल श्रावको का फिर भी

यद दिलाया उचित समझा जाता है कि वह शासन पेभी शासनालकार  
बन्द कामदेव के पदपर बैठे हुए श्रेणिक, सप्रति, कुमारपाल के स्थाना-  
प्राप्त शासन रक्षक महाब्रुभाव श्रावको को उचित है, उनका  
पद है। रु वदत हुए कुसपको—फैल ते हुए आपा पयको रोकनेका  
मन करे।

सुना जाता है कि "श्रीधर्मवोध सूरि" जीव समयमे १८  
श्रावको को अविचार था, कि वीर शासनक साधु साध्वी श्रावक श्राविका  
शां होने वहा सम अगह उन (१८) श्रावको की सत्ता चले, जिस किसी  
का आ काह धर्मवाद होय उसकी फिर्याद उनके पास आवे, उनका  
हस्ताक वह करे। उनके दिय इसाफ को—उनके क्रिये फैसले को  
साह अयमान कर सके।

हे शासनपति ! हे हितवत्सल ! हे बरुणानिधि ! वीर प्रभो ! जो  
शांतिका साम्राज्य आपने फैलाया था वह आज नामरूप—कथाशयही रह-  
गया है उसे फिरसे उन्नीवित करो। आप श्रीशक्ति मन्त्रोंके हृदयमदिरोमे  
से जो शमसुहृद् रूटा खला जा रहा है उसको फिरसे पीछे लौटाकर आ-  
श्रितों को उपकृत करा।

दीनोदार धुरधर ! आपके लगाए नदनवनको उज्ज्वलते देखके आपके  
उहराय रक्षरूप दामन देव क्यों उपक्षा कर रहे हैं ?।

हम बड़े हृदयक साथ कहना पड़ता है कि प्रमुका मार्ग तो विनय  
विवकसे सपन्न है उसम तो गुणी के गुणकी पहचान है, गुणवानका  
कर है। नीच के एक दृष्टा त से आप इस विषयको खूब तौरपर सम-  
झ सवेग।

साय भी नगरी के नजदीक किसी स्थानका रहनेवाला 'रुकदक'  
नामा तापस मनकी शवाश्रवा समाधान करने क लिये श्रमण भग-  
वान् महावीर क पास आया, मनु श्री महावीरदेव अपने शिष्य गौतम

का कहते हैं “ गौतम आज तुझ तरा पूर्व परिचित सबधी मिलेगा; गौतमने पूछा प्रमु । वह कौन ? भगवान् कहत हं ‘स्कन्दक तापस प्रश्नार्थ पूछनको आ रहा है, अभी थोड़ी दरम यहाँ आ पहुचगा ?”

गौतम स्वामी प्रमुस पूछनर उसका सञ्चार करने के लिये सामने जाते हैं । स्कन्दक को बड़ प्रमसे मिलते हैं, आदरपूर्वक उसका प्रमुके पास लाते हैं, स्कन्दक प्रमुके पास आकर अपनी शकाओको पूछता है । वहाँ साफ लिखा है कि “ स्कन्दक का पास आए जानकर गौतम स्वामी पीरन अपने आसन का छोड़कर खड़े हुए, स्कन्दक क सामन गए, और बड़े आनदसे उसका स्वागत करते हैं ”

### [ भगवता मून शतक दूसरा, उद्देशा पहला. ]

चार ज्ञानके धारक १४००० साधुओं क स्वामी गौतम गणधर एक तापस को आता देख उसके सामन जावे, उसका आदर सञ्चार करे, झेहिळे शरदोम उसको स्वागत पूछे। यह शब्द क्या कहत हैं ? । इस प्रकरणसे यह एक उत्तम शिक्षा मिलती है कि “ मनुष्यमात्रसे भ्रातृभाव रखा उनको ज्यो बने त्या धर्मके अमिमुक्त नरो परतु पराडमुक्त न कर, “ तू ” करन स पशुजाति कुत्ता भी पूछना हिलाता हिलाता आके पा ओमे गिरता है परतु “ दूर दूर ” करन स दूर चला जाता है, तो मनुष्य अपमानको कैसे सहन कर सकता है ? इस लिय जीव मात्रसे उस ने भी विशष कर समानधर्मोस सहायुमृति ही रखना चाहिय ।

### श्रावक—श्राविका

जैन समदायर अनेक शास्त्रो मे “ श्रावक ” शब्दकी यह ही व्याख्या की है कि—जा जीवादि नव तत्वोका, जाननेगळा हो यायापार्जित धनको सात क्षेत्रोमे खचनेवाला हो, कम्मदलिको को आत्मासे शुदा करनेवाला हो, उसका ‘ श्रावक ’ कहते हैं । इसी अर्थके किता एक प्रकरणमे

श्रावक क पांच नियमोंका वणन हो चुका है। उसक उत्तरभूत ३ अनुव्रत, और ४ शिक्षाव्रत मिलानेसे १२ व्रत होत हैं, जो श्रावक धर्मा सर्वस्व है। इन बारा व्रतोंका सविस्तर स्वरूप उपदेश प्रासाद, वैजयन्तवादर्श, गुणस्थानम्मारोह हिन्दी, श्रावक-करुणामृत, आदि प्रयोक्त जाना जा सकता है। अब यहाँ एक बात और भी ध्यानमें रखने वैसी है कि—सुपात्र पोषणका सत्कारमें बड़ा प्रभाव वर्णित है। साधु साध्वीको उत्तम पात्र गिना है तो श्रावकको भी मध्यम पात्र तो गिना ही है।

### ॥ श्रावकके २१ गुण ॥

- १ गभीर होवे, परछु क्षुद्र न होवे।
- २ सर्व जग सपूर्ण होवे।
- ३ शांत प्रकृतिवाला होवे।
- ४ लाकप्रिय होवे।
- ५ सरस्परिणामी होवे। प्रेक्षा न होवे।
- ६ इसलोक पर लोकक भयसे डरनेवाला होवे।
- ७ अशठ होवे, परकी टगनेवाला न होव।
- ८ तानि यवाला होवे, परकी प्रार्थनाका भग न करे।
- ९ लज्जावत होवे, निर्लज्ज न होवे।
- १० दयालु होवे दीन दुस्तीपर दया करे।
- ११ मध्यस्थ भाववाला होव, पक्षपाती न होव।
- १२ गुणी भीमपर राग करनेवाला होव।
- १३ सत्यधर्म क्याका कटनेवाला होव।
- १४ सुशील-धर्मी परिवारवाला होवे।
- १५ दीर्घदर्शी लवा विचार करनेवाला होवे।
- १६ पक्षपातरहित होवे।

३६० समान धर्मि मनुष्यों को व्यापार में लगाकर अपन समान कोटि ध्वज बनाया था । । बाहरे जगसिंह तेरे होने को घन्य है । तेरे जन्म और जीवितको पुन पुन धन्य है । धन्य है तेरे माता पिता को ।

( ३ ) पाटण में कुमारपाल के समयमें आभड शाह नामक प्रसिद्ध शाहुकार रहता था उसने एक ऋद्ध आठ लाख रुपया खच कर जिन आसन की शोभा में वृद्धिका थी । उसने उसमाटा रकमका अधिकांश सीदाते समान धर्मियों के उपकार में ही खच किया था । उस वक्त अभयकुमार जैस और भी अनेक एस धर्मी मनुष्य पाटण में बसते थे ।

( ४ ) मादवगढ़ में जब जैन लोगोकी भरपूर बस्ति थी उस वक्त वहाँ एक ऐसा रिवाज था कि जा कोई समान धर्मी गरीब हालत में वहाँ आता उसे प्रतिघर से एक एक अशर्पि और एक एक लकड़ी बरत बनाने के लिय दी जाती । इस से वह एकही दिनमें दरिद्र को तिला जली दे कर ल गधिपति शाहुकार बन जाता था । विन्म सबद १२८३ में नागपुर से श्री सिद्धाचलजीका सघ आया था । वस्तुपाल तेजपालने उनको बड़ आदरस अपने नगर में बुलाया और भोजनदि से उनक सर्व सघ लोगो की भक्तिसेवा की । इतनाही नहि धल्कि उन सर्व मनुष्यों को उच आसन पर बैठाकर मन्त्रीराजने अपने हाथसे सब के पैर धोये ।

“ वस्तुपाल वस्तुपाल स स्तुत्य सब साधुषु ” यह वाक्य सवधा सत्य है—सवधा यथाथ है, इस में अश मात्र भी अनूत नहीं ।

अब सोचना चाहिये कि हमारे नैत्यक आर नैमित्तिक सब कार्यों में हमका यह ही शिक्षा दी जाती है कि “ महाजनो यन गत स पथा ” इस सोचहरी वाक्य को पुन पुन जिह्वास उच्चारते हुए भी—वात्वार

तो से मुनते हुए भा अगर उसपर कुठ भी ख्याल न दें, कुठ मी परि  
 िन न करें, तो मला हमने किया ही क्या ? समझा ही क्या ?

आजक समय मे सातहा क्षेत्रोमे से चैत्य १ विम्ब २साधु ३साध्वी ४  
 ५ हा क्षेत्र समयानुसार पुष्ट है । सिफ घाटा है तो ज्ञान क्षेत्र, श्रावक  
 श्राविका क्षेत्र इन तीन ही क्षेत्रों की सार सम्मालका है ।

ज्ञानक पुस्तको का घाटा नहीं परंतु उनका फैलाव करनेवाले जैसे  
 चाहिये वैसे थोड हैं ।

ज्ञान पानेकी सस्याएँ हैं परंतु उनमे क्या पढाया जाता है ? जो  
 पढाया जाता है वह बच्चोंकी जिन्दगी को सुधारता है या बरबाद करता  
 है ? इन बातोंका निरीक्षण सूदम दृष्टिसे करने योग्य है ।

उसमे भी खास करके वर्तमान समय की स्थिति तर्फ देखकर श्री  
 सबको चाहिये कि वह " श्रावक और श्राविका " इन जेनो क्षेत्रोंका  
 बचावे । लार्डा मनुष्य मूल के मोर जैनधर्मका पारित्याग कर किश्रियन  
 होते जा रहे हैं । हजारों मनुष्य आर्य समाज हो रहे हैं । एगो दशामे हमारे  
 समुदायमे गरीबोंके उद्धार का साधन नहीं । गरीबोंकी फयाद का सुनन  
 वाला कोई नहीं । उनको पम्भरके खानेकी अन्न नहीं । पहननेकी घब  
 नहा, रहने का मकान नहीं ।

एक लाख जिननी पारसी कोम अपना केसा उपकार कर रही है ।  
 मुसलमान लाग किस तरह आपसमे मिल कर काम कर रहे हैं ? ससारमे  
 किस बस्तु की खदर है ? इन बातोंका परामर्श जहाँतक नही किया  
 जाता वहाँतक समाजका दखि दूर होना असभव है ।

शरीरका जो अग विगडा होता है उसीका सुधारा करना उचित  
 है । विगडते सडते अगका सुधारा हो जावेनो सारा शरीर बच सकता है।

इस लिये हमारा श्रीसचसे अगमे यही यिनती है कि 1-म तरह भम और जैन समझका पूव ही की तरह फिर भी अस्त्युदय हो । महात्मा महावीर देवके जगत कन्याण कर जावन और वचनसे जगत उद्धार हा ऐसी काम कर अपना और जगदका कन्याण करनमे क बद्ध होव ।

॥ तथास्तु ॥

